हिंदी भूषण परीक्षा की सहायक पुस्तकें

भक्त पंचरत्न की कुंजी

(टीकाकार—श्री शंभुदयाल सकसेना साहित्य रत्न)

इसमें भक्त-पंचरत्न के सब पद्यों के अर्थ बड़ी सरल भाषा में विस्तार-पूर्वक दिये गये हैं। कठिन शब्दों के अर्थ तथा प्रसंगवश आने वाली सब कहानियाँ भी दी गई हैं। मूल पुस्तक की छपाई में जो अशुद्धियाँ हैं, कुंजी में उनका भी निर्देश कर दिया गया है। कुंजी की सहायता से विद्यार्थी स्वयं इस पुस्तक को पढ़ सकते हैं। मूल्य ।।।=)

वीर-कविता की कुंजी

(ले०—श्री शंभुदयाल सकसेना, साहित्यरत्न)

इसमें वीर कविता के सब पद्यों के अर्थ बड़ी सरल भाषा में दिए गए हैं। कठिन शब्दों के अर्थ और प्रसंगवश आने वाली सब कहानियाँ भी दी हैं। इस कुंजी की सहायता से विद्यार्थी स्वयं इस पुस्तक को पढ़ सकते हैं।

हिंदी भूषण परीक्षा की सहायक पुस्तकें

रस और अलंकार

लें०—पं० रामबहोरी शुक्ल, ऐम. ए., साहित्यरत्न,
क्वींस कालेज, बनारस

इस पुस्तक में रस और अलंकार का कठिन विषय बड़ी सरलता-पूर्वक समझाया गया है। प्रत्येक अलंकार के लक्षण, उदाहरण, तथा अलंकारों के पारस्परिक भेद विद्वान् लेखक ने बड़ी खूबी से समझाये हैं। सभी उदाहरण आजकल की खड़ी बोली की कविता से दिये गये हैं, जिससे विद्यार्थी बड़ी आसानी से उन्हें समझ सकते हैं। इसको पढ़कर हिन्दी भूषण के विद्यार्थियों को इस विषय की और कोई पुस्तक पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती। मू०॥=)

पिंगल परिचय

(ले०—पं० रामबहोरी शुक्ल एम., ए., साहित्य-रत्न.
क्वीन्स कालेज, बनारस)

इसमें 'सरल अलंकार' के सब छन्दों के लक्षण उसी छंद में देकर उसके उदाहरण खूब समझाकर दिये गये हैं, जिससे विद्यार्थी बहुत आसानी से छन्द:शास्त्र को समझ सकते हैं। मूल्य ।=)

विशेषतः विद्यार्थियों के लिए

वीर कविता

सम्पादक—

धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री

एम० ए०, एम० ओ० एल० तर्क शिरोमणि

(प्रोफ़ेसर मेरठ कालेज)

प्रकाशक—

साहित्य भवन

हस्पताल रोड, लाहौर ।

जून १९३९

प्रकाशक—

श्री चमनलाल एम० ए०

साहित्य भवन,

हस्पताल रोड, लाहौर

मुद्रक—

लाला रामभेजा कपूर

मालिक लाहौर आर्ट

१६ अनारकली

भूमिका

इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन हिन्दी कविता में भक्ति-रस की प्रधानता है। भक्ति कविता की दृष्टि से संसार भर की किसी भी भाषा का साहित्य शायद ही प्राचीन हिन्दी कविता का मुकाबला कर सके। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि प्राचीन हिन्दी कविता में वीररस का अभाव है। बहुत से लोगों का विचार है कि भक्तिरस के बाद हिन्दी में शृंगार रस की प्रधानता है, और प्राचीन हिन्दी कविता में अन्य रसों, विशेषकर वीररस, की बहुत कमी है। मुझे विश्वास है कि हिन्दी की प्राचीन वीर-कविता का यह संग्रह इस धारणा का सजीव प्रतिवाद सिद्ध होगा।

ग्यारहवीं सदी से लेकर अठारहवीं सदी तक हिन्दी में जो 'रासो' लिखे गए, उनमें वीर रस का स्थान बहुत प्रमुख है। उनके अतिरिक्त भूषण-से महाकवि ने हिन्दी में जिस ढंग की वीर-कविता लिखी है, उस ढंग की कविता मध्य युग के बहुत कम कवियों ने लिखी होगी।

आज कविता में शब्द, छन्द और अनुप्रासों की उतनी महत्ता नहीं रही। परन्तु मध्ययुग में, संसार भर के सभी देशों में इन चीज़ों को बड़ी महत्ता दी जाती थी। महाकवि भूषण की वीर-

कविता में न केवल ओजपूर्ण अनुप्रासों की ही प्रधानता है, अपितु वह ऐसी चीज़ है कि जिसे यदि ठीक ढंग से पढ़ा जाय, तो सुनने वाला व्यक्ति, उस कविता का एक अक्षर समझे बिना भी वीररस से आप्लावित हो उठेगा। एक दृष्टि से इस बात की महत्ता आज भी कम नहीं गिनी जानी चाहिए।

ब्रजभाषा के अन्य अनेक प्राचीन और नवीन प्रमुख कवियों ने वीररस की कविता का निर्माण किया है। केवल भूषण की रचनाओं को पढ़कर हम हिन्दी की वीर कविता का सही-सही अन्दाज़ा नहीं लगा सकते। उसमें अन्य भी अनेक शैलियाँ तथा अनेक प्रकार के भाव हैं। चन्दवरदाई से लेकर वर्तमान हिन्दी के वीर कवि श्री वियोगी हरि तक की चुनी हुई रचनाओं से यह संग्रह तैयार किया गया है। इसे प्राचीन हिन्दी की वीर कविता का पूर्णरूप से प्रतिनिधि संग्रह कहा जा सकता है।

महाकवि भूषण की अनेक अच्छी-अच्छी कविताएँ, बहुत से सज्जनों की राय के अनुसार, जातीय द्वेष को उकसाने वाली हैं। मेरी राय में क्रान्ति के उस युग के एक कवि को आज, इन नई परिस्थितियों में भी उसी युग के प्रकाश में पढ़ सकना असम्भव नहीं है और यदि हम महाकवि भूषण को उसी युग के प्रकाश में पढ़ेंगे तो हमें उसमें अनौचित्य दिखाई नहीं देगा। तथापि इस संग्रह में मैंने उन छन्दों को सम्मिलित नहीं किया, जिनके सम्बन्ध में अनेक सज्जनों को उपर्युक्त शिकायत है।

वीर कविता

चन्द बरदाई

महाकवि चन्द का जन्म सन् ११४८ में लाहौर नगर में हुआ था। इस तरह उसे पंजाब का एक श्रेष्ठ महाकवि कहा जा सकता है। उसके पिता का नाम राववेण था। कहा जाता है कि चन्द और महाराज का जन्म एक ही तिथि को हुआ था। वे दोनों आजीवन घनिष्ठ मित्र रहे और सन् ११९१ में दोनों का देहान्त भी एक ही साथ हुआ।

चन्द ने दो विवाह किए थे और वह ग्यारह संतानों का बाप था। अजमेर के चौहान उसके यजमान थे। पृथ्वीराज के सब युद्धों में चन्द उनके साथ-साथ रहा और इन युद्धों के सम्बन्ध में वह कविताएँ लिखता रहा। पृथ्वीराज की जीवनी उसने 'पृथ्वीराज रासो' के नाम से लिखी है।

यह भी प्रसिद्ध है कि पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध में चन्द उसके साथ नहीं था। वह उस समय देवी के मन्दिर में बैठकर

काव्य रचना कर रहा था। युद्ध में पृथ्वीराज गया और शहाबुद्दीन ने उसे कैद कर लिया। पृथ्वीराज को गज़नी ले जाया गया। चन्द को जब यह समाचार मिला तब उसने अपना रासो अपने पुत्र जल्ह के सपुर्द कर दिया और गज़नी के लिए रवाना हो गया।

जल्ह ने रासो का अन्तिम भाग लिखा है। उससे विदित होता है कि गज़नी पहुँच कर चन्द पृथ्वीराज से मिला। शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज को अन्धा कर दिया था। चंद ने मीठी-मीठी बातें कर उसे इस बात के लिए तैयार कर लिया कि पृथ्वीराज से शब्दभेदी बाण का लक्ष्य लगवा कर देखे। तब एक कविता से चंद ने पृथ्वीराज को शहाबुद्दीन की दूरी और स्थान का पता बता दिया। पृथ्वीराज अचूक निशानेबाज़ था, उसने तीर चला कर शहाबुद्दीन का वध कर दिया। इसके बाद पृथ्वीराज और चन्द ने एक साथ आत्मघात कर लिया।

चन्द के छप्पय विशेष प्रसिद्ध हैं। 'छप्पय' लिखने में इतनी सफलता अन्य किसी कवि को नहीं मिली। उसमें संयुक्ताक्षरों की अधिकता है और शैली प्राचीन होने के कारण वह दुरूह भी है। चन्द की कविता में उर्दू और फ़ारसी के भी काफ़ी शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

—गोरा—बादल—खंड

भुजंगप्रयात

खुरासान मुलतान खन्धार मीरं,
चलक सोवलं तेग अच्चूक तीरं ॥ १ ॥
रुहंगी फिरंगी हलंबी समानी,
ठटी ठट्ट बल्लोच ढालं निसानी ॥ २ ॥
मँजारी-चखी मुक्ख जम्बुक्क लारी,
हजारी हजारी हुकें जोध भारी ॥ ३ ॥
तिनं पष्परं पीठ हय जीन सालं,
फिरंगी कती पास सुकलात लालं ॥ ४ ॥
तहाँ बाघ बाघं मरुरी रिखोरी,
घनं सार सम्मूह अरु चौर भोरी ॥ ५ ॥
एराकी अरब्बी पटी तेज ताजी,
तुरक्की महाबान कम्मान बाजी ॥ ६ ॥
ऐसे असिव असवार अग्गेल गोलं,
भिरे जून जेतं सुतत्तं अमोलं ॥ ७ ॥
तिनं मद्धि सुलतान साहाब आपं,
इसे रूप सों फौज बरनाय जापं ॥ ८ ॥
तिनं घेरियं राज पृथिराज राजं,
चिहों ओर घनघोर नीसान बाजं ॥ ९ ॥

करे रुण्ड मुण्डं करी कुम्भ फारे,
बरं सूर सामन्त हुकि गर्ज्ज भारे॥ १४॥
करी चीह चिक्कार करि कल्प भग्गे,
मदं तज्जियं लाज ऊमङ्ग मग्गे॥ १५॥
दौरे गजं अन्ध चहुआन केरो,
करीयं गिरद्दं चिहो चक्क फेरो॥ १६॥
गिरद्दं उड़ी भान अन्धार रैनं,
गई सूधि सुज्झै नहीं मज्झि नैनं॥ १७॥
सिरं नाय कम्मान प्रथिराज राजं,
पकरिये साहि जिमि कुलिङ्ग बाजं॥ १८॥
लै चल्यौ सितावी करी फारि फौजं,
परे मीर से पञ्च तहँ खेत चौजं॥ १९॥
रजंपुत्त पच्चास जुज्झे अमोरं,
वजै जीत के नद्द नीसान घोरं॥ २०॥

दूहा

जीति भई प्रथिराज की, पकरि साह लै संग।
दिली दिसि मारगि लगौ, उतरि घाट गिर गंग॥ २१॥
वर गोरी पद्मावती, गहि गोरी सुरतान॥
निकट नगर दिल्ली गये, चत्रभुजा चहुआन॥ २२॥

कवित्त

जोति बिद सोधे लगन्न सुभ घरी परट्टिय ।
हर बाँसह मंडप बनाय करि भाँवरि गंठिय ॥
ब्रह्म बेद उच्चरहिं होम चौरी जु प्रति वर ।
पद्मावति दुलहिन दुल्लह प्रथिराज राज नर ॥
डण्ड्यो साह सहाबदी अट्ठ सहस हय बर सुधर ।
दै दान मान षट भेस को चढ़े राज द्रुग्गा हुजर ॥ २३ ॥

दूहा

चढ़े राज द्रुग्गह नृपति, सुगत राज प्रथिराज ।
अति आनन्द आनन्द सौं, हिन्दवान सिरताज ॥ २४ ॥

मलिक मोहम्मद जायसी

मलिक मोहम्मद के जन्म तथा निधन काल के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। तथापि उनका रचनाकाल सन् १५२७ माना जाता है। इसका अभिप्राय यही है कि ईसा की सोलहवीं सदी के पूर्व भाग में उनका काल रक्खा जा सकता है। वह सम्भवतः गाज़ीपुर से आकर रायबरेली ज़िले के जायस नामक कसबे में रहने लगे थे, इसी से उन्हें 'जायसी' कहा जाने लगा।

उनका बचपन बड़ी दरिद्रता में बीता। जब वह सात ही बरस के थे, तभी उनकी माता का देहान्त हो गया। पिता का देहान्त पहले ही हो चुका था। बालक मुहम्मद को भी चेचक निकल आई और उनकी एक आँख जाती रही। अनाथ होकर वे साधुसन्तों के साथ रहने लगे। छोटी ही उम्र में वे दर्शन और योग की बहुत सी बातें सीख गये।

जवानी के शुरू में उन्होंने कविता करनी प्रारम्भ की। उनकी प्रतिभा के प्रभाव से बहुत से लोग उनके शिष्य बन गये। उनके बनाए बारहमासे खूब लोकप्रिय हो गए। एक बार उनका एक शिष्य अमेठी में उनका बनाया नागमती का बारहमासा गा रहा था कि वहाँ के राजा ने उसे सुना। यह बारहमासा राजा को इतना पसन्द आया कि शिष्य के द्वारा राजा ने मलिक मुहम्मद को ही अपने यहाँ बुला भेजा। उसके बाद उनका जीवन बड़े सुख से बीता। राजा उनका बड़ा सम्मान करता था। उनके देहान्त के बाद राजा ने अपने महलों के निकट ही उनकी कब्र भी बनवा दी, जो अब तक कायम है।

एक बार एक रईस ने उनकी आकृति की मज़ाक उड़ाई थी, इस पर उन्होंने कहा-"मोहि का हंससि कि कोहरहिं ?" अर्थात् तुम मुझ पर हँसते हो, या मेरे रचयिता (कुम्भकार) पर ?"

इस पर वह बड़ा लज्जित हुआ।

मलिक मोहम्मद ने 'पद्मावत' और 'अखरावट' नाम से दो पुस्तकें लिखीं। पद्मावत पद्य में एक बहुत बड़ा और मनोरंजक उपन्यास है। यह देहाती समाज में बहुत लोकप्रिय हुआ और उसके आधार पर बहुत से किस्से लिखे गये। यह ग्रन्थ शृंगार रस का है, तथापि इसमें अन्य रसों का अभाव नहीं है। पद्मावत में से गोरा बादल युद्ध का कुछ वर्णन यहाँ दिया जाता है—

चौपाई

सोरह सै चण्डोल सँवारे। कुँवर सजोइल कै बै
पद्मावति कर सजा बिवानू। बैठ लोहार न जानै भ
रचि बिवान सो साजि सँवारा। चहुँ दिसि चँवर करहिं सब
साजि सबै चंडोल चलाए। सुरंग ओहार, मोति बहु ला
भए सँग गोरा बादल बली। कहत चले पद्मावति चली
हीरा रतन पदारथ झूलहिं। देखि बिवान देवता भूलहिं
सोरह सै सँग चली सहेली। कँवल न रहा, और को बेली ?

राजहिं चली छोड़ावै तहँ रानी होइ ओल।
तीस सहस तुरि खिचीं सँग सोरह सै चंडोल ॥ १ ॥

राजा बँदि जेहि के सौंपना। गा गोरा तेहि पहँ अगमना
टका लाख दस दीन्ह अँकोरा। बिनती कीन्ह पायँ गहि गोरा
बिनवौं बादसाह सौं जाई। अब रानी पद्मावति आई
बिनती करै आइ हौं दिल्ली चितउर कै मोहि स्यो है किल्ली
बिनती करै जहाँ है पूँजी। सब भण्डार कै मोहि स्यो कूँजी
एक घरी जौं आग्या पावौं। राजहि सौंपि मँदिर महँ आवौं
तब रखवार गए सुलतानी। देखि अँकोर भए जस पानी

लीन्ह अँकोर हाथ जेहि जीउ दीन्ह तेहि हाथ।
जहाँ चलावै तहँ चलै फेरे फिरै न माथ ॥ २ ॥

लोभ पाप कै नदी अँकोरा। सत्त न रहै हाथ जो बोरा
जहँ अँकोर तहँ नीक न राजू। ठाकुर केर बिनासै काजू
भा जिउ घिउ रखवारन्ह केरा। दरब लोभ चण्डोल न हेरा
जाइ साह आगे सिर नावा। 'ए जगसूर, चाँद चलि आवा
जावत हैं सब नखत तराई। सोरह से चण्डोल सो आई
चितउर जेति राज कै पूँजी। लई सो आइ पदमावति कूँजी
बिनती करै जोरि कर खरी। लेइ सौंपौं राजा एक घरी

इहाँ उहाँ कर स्वामी दुऔ जगत मोहि आस।
पहिले दरस देखावहु तौ पठवहु कैलास' ॥ ३ ॥

आग्या भई, जाइ एक घरी। छूँछि जो घरी फेरि बिधि भरी
चलि बिवान राजा पहँ आवा। सँग चण्डोल जगत सब छावा
पदमावति के भेस लोहारू। निकसि काटि बँदि कीन्ह जोहारू
उठा कोपि जस छूटा राजा। चढ़ा तुरंग, सिंघ अस गाजा
गोरा बादल खाँड़े काढ़े। निकसि कुँवर चढ़ि चढ़ि भए ठाढ़े
तीख तुरंग गगन सिर लागा। केहुँ जुगुति करि टेकी बागा
जो जिउ ऊपर खड़ग सँभारा। मरनहार सो सहसन्ह मारा

भई पुकार साह सौं, 'ससि औ नखत सो नाहिं।
छर कै गहन गरासा, गहन गरासे जाहिं' ॥ ४ ॥

लेइ राजा चितउर कहँ चले। छूटेउ सिंघ, मिरिग खलभले
चढ़ा साहि, चढ़ि लाग गोहारी। कटक असूझ परी जग कारी
फिरि गोरा बादल सौं कहा। 'गहन छूटि पुनि चाहै गहा

पहुँ दिसि आवै लोपत भानू । अब इहै गोइ, इहै मैदानू
तुइ अब राजहि लेइ चलु, गोरा । हौं अब उलटि जुरौं भा जोरा
दहु चौगान तुरुक कस खेला । होइ खेलार रन जुरौं अकेला
तौ पावौं बादल अस नाऊँ । जौ मैदान गोइ लेइ जाऊँ

आजु खड़ग चौगान गहि करौं सीस रिपु गोइ ।
खेलौं सौंह साह सौं हाल जगत महँ होइ' ॥ ५ ॥

तब आगमन होइ गोरा मिला । 'तुइ राजहि लेइ चलु, बादला' !
'पिता मरै जो सँकरे साथा । मीचु न देइ पूत के माथा
मैं अब आउ भरी औ भूँजी । का पछिताव आउ जौ पूजी ?
बहुतन्ह मारि मरौं जौ जूझी । तुम जिनि रोएहु तौ मन बूझी'
कुँवर सहस सँग गोरा लीन्हे । और बीर बादल सँग कीन्हे
गोरहि समदि मेघ अस गाजा । चला लिए आगे करि राजा
गोरा उलटि खेत भा ठाढ़ा । पुरुष देखि चाव मन बाढ़ा

आव कटक सुलतानी गगन छपा मसि माँझ ।
परति आव जग कारी होति आव दिन साँझ ॥ ६ ॥

फिरि आगे गोरा तब हाँका । 'खेलौं, करौं आजु रन-साका
हौं कहिए धौलागिरि गोरा । टरौं न टारे, अंग न मोरा
सोहिल जैस गगन उपराहीं । मेघ-घटा मोहि देखि बिलाहीं
सहसौ सीस सेस सम लेखौं सहसौं नैन इन्द्र सम देखौं
चारिउ भुजा चतुरभुज आजू कंस न रहा, और को साजू

हौं होइ भीम आजु रन गाजा । पाछे घालि डुंगवै राजा
होइ हनुवँत जमकातर ढाहौं । आजु स्वामि साँकरे निबाहौं

होइ नल नील आजु हौं देउँ समुद महँ मेड़ ।
कटक साह कर टेकौं होइ सुमेरु रन बेड़ ॥ ७ ॥

ओनई घटा चहूँ दिसि आई । छूटहिं बान मेघ-झरि लाई
डोलै नाहिं देव अस आदी । पहुँचे आइ तुरुक सब बादी
हाथन्ह गहे खड्ग हरद्वानी । चमकहिं सेल बीजु कै बानी
सोझ बान जस आवहिं गाजा । बासुकि डरै सीस जनु बाजा
नेजा उठे डरै मन इंदू । आइ न बाज जानि कै हिंदू
गोरै साथ लीन्ह सब साथी । जस मैमंत सूँड़ बिनु हाथी
सब मिलि पहिलि उठौनी कीन्ही । आवत आइ हाँकि रन दीन्ही

रुंड मुंड अब टूटहिं स्यों बखतर औ कूँड़ ।
तुरय होहिं बिनु काँधे हस्ति होहिं बिनु सूँड़ ॥ ८ ॥

भइ बगमेल, सेल घनघोरा । औ गज-पेल, अकेल सो गोरा
सहस कुँवर सहसौ सत बाँधा । भार-पहार जूझ कर काँधा
लगे मरै गोरा के आगे । बाग न मोर घाव मुख लागे
जैस पतंग आगि धँसि लेई । एक मुवै, दूसर जिउ देई
टूटहिं सीस, अधर धर मारै । लोटहिं कंधहि कंध निरारै
कोई परहिं रुहिर होइ राते । कोई घायल घूमहि माते
कोइ खुरखेह गए भरि भोगी । भसम चढ़ाइ परे होइ जोगी

घरी एक भारत भा भा असवारन्ह मेल।
जूझि कुँवर सब निबरें गोरा रहा अकेल॥ ९॥

गोरैं देख साथि सब जूझा। आपन काल नियर भा, बूझा
कोपि सिंघ सामुहँ रन मेला। लाखन्ह सौं नहि मरै अकेला।
लेइ हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा। जैसे पवन बिदारै घटा
जेहि सिर देइ कोपि करवारू। स्यों घोड़े टूटै असवारू
लोटहि सीस कबंध निनारे। माठ मजीठ जनहुँ रन ढारे
खेलि फाग सेंदुर छिरकावा। चाँचरि खेलि आगि जनु लावा
हस्ती घोड़ धाइ जो धूका। ताहि कीन्ह सो रुहिर भभूका

भई अग्या सुलतानी 'बेगि करहु एहि हाथ।
रतन जात है आगे लिए पदारथ साथ'॥ १०॥

सबै कटक मिलि गोरहि छेका। गूँजत सिंह जाइ नहिं टेका
जेहि दिसि उठै सोइ जनु खावा। पलटि सिंघ तेहि ठाँव न आवा
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा। मुए पाछ कोई घिसियावा
करै सिंघ मुख-सौंहहि दीठी। जौं लगि जियै देइ नहिं पीठी
सरजा बीर सिंह चढ़ि गाजा। आइ सौंह गोरा सौं बाजा
पहुँचा आइ सिंघ असवारू। जहाँ सिंघ गोरा बरियारू
मारेसि साँग पेट महँ धँसी। काढ़ेसि हुमुकि आँति भुइँ खसी

भाट कहा 'धनि गोरा, तू भा रावन राव।
आँति समेटि बाँधि कै तुरय देत है पाव'॥ ११॥

काढ़ेसि आंत अब भा भुइँ परना। आंत न रहे टेक सिर भरना
कहि कै गरजि सिंह अस धावा। सरजा सारदूल पहँ आवा
सरजै लीन्ह साँग पर घाऊ। परा खड़ग जनु परा निहाऊ
दूसर खड़ग कंध पर दीन्हा। सरजै ओहि ओड़न पर लीन्हा
तीसर खड़ग कूँड़ पर लावा। काँध गुरुज हुत, घाव न आवा
तब सरजा कोपा बरिबंडा। जनहु सदूर केर भुजदण्डा
कोपि गरजि मारेसि तस बाजा। जानहु परी टूटि सिर गाजा

गोरा परा खेत महँ सुर पहुँचावा पान।
बादल लेइगा राजा लेइ चितउर नियरान ॥ १२ ॥

लंका में युद्ध का आरम्भ

रिपु के समाचार जब पाये। राम सचिव सब निकट बोलाये॥
लंका बांके चारि दुआरा। केहि बिधि लागिय करहु बिचारा॥
तब कपीस रिच्छेस बिभीषन। सुमिरि हृदय दिन-कर-कुल-भूषन॥
करि बिचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपिकटक बनावा॥
जथाजोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोलि तब लीन्हे॥
प्रभुप्रताप कहि सब समुझाये। सुनि कपि सिंहनाद करि धाये॥
हरषित रामचरन सिर नावहिं। गहि गिरिसिखर बीर सब धावहिं॥
गरजहिं तरजहिं भालु कपीसा। जय रघुबीर कोसलाधीसा॥
जानत परमदुर्ग अति लंका। प्रभुप्रताप कपि चलेउ असंका॥
घटाटोप करि चहुं दिसि घेरी। मुखहि निसान बजावहिं भेरी॥

दो०—जयति राम जय लछिमनु जय कपीस सुग्रीवँ।
गरजहिं केहरिनाद कपि भालु महा-बल-सींवँ॥१॥

लंका भयेउ कोलाहल भारी। सुना दसानन अतिअहँकारी॥
देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई। बिहँसि निसाचरसेन बोलाई॥
आये कीस काल के प्रेरे। छुधवंत सब निसिचर मेरे।
अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा। गृह बैठे अहार बिधि दीन्हा।
सुभट सकल चारिहु दिसि जाहू। धरि धरि भालु कीस सब खाहू।
उमा रावनहि अस अभिमाना। जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना।

लंका में युद्ध का आरम्भ

रिपु के समाचार जब पाये। राम सचिव सब निकट बोलाये॥
लंका बांके चारि दुआरा। केहि विधि लागिय करहु विचारा॥
तब कपीस रिच्छेस विभीषन। सुमिरि हृदय दिन-कर-कुल-भूषन॥
करि विचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपिकटक बनावा॥
जथाजोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोलि तब लीन्हे॥
प्रभुप्रताप कहि सब समुझाये। सुनि कपि सिंहनाद करि धाये॥
हरषित रामचरन सिर नावहिं। गहि गिरिसिखर बीर सब धावहिं॥
गरजहिं तरजहिं भालु कपीसा। जय रघुबीर कोसलाधीसा॥
जानत परमदुर्ग अति लंका। प्रभुप्रताप कपि चलेउ असंका॥
घटाटोप करि चहुं दिसि घेरी। मुखहिं निसान बजावहिं भेरी॥

दो०—जयति राम जय लछिमनु जय कपीस सुग्रीवँ।
गरजहिं केहरिनाद कपि भालु महा-बल-सींवँ॥१॥

लंका भयेउ कोलाहल भारी। सुना दसानन अतिअहँकारी॥
देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई। बिहँसि निसाचरसेन बोलाई॥
आये कीस काल के प्रेरे। छुधावंत सब निसिचर मेरे॥
अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा। गृह बैठे अहार विधि दीन्हा।
सुभट सकल चारिहु दिसि जाहू। धरि धरि भालु कीस सब खाहू॥
उमा रावनहि अस अभिमाना। जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना॥

राम-प्रताप-प्रबल कपिजूथा। मरदहिं निसिचर-सुभट-बरूथा॥
चढ़े दुर्ग पुनि जहँ तहँ बानर। जय रघुबीर-प्रताप दिवाकर॥
चले निसाचर-निकर पराई। प्रबल पवन जिमि घन समुदाई॥
हाहाकार भयेउ पुर भारी। रोवहिं बालक आतुर नारी॥
सब मिलि देहिं रावनहिं गारी। राजु करत एहि मृत्यु हँकारी॥
निजदल बिचल सुना तेहि काना। फेरि सुभट लंकेस रिसाना॥
जो नर बिमुख फिरा मैं जाना। सो मैं हतब करालकृपाना॥
सरबसु खाइ भोग करि नाना। समरभूमि भये वल्लभ प्राना॥
उग्र बचन सुनि सकल डेराने। चले क्रोध करि सुभट लजाने॥
सनमुख मरन बीर कै सोभा। तब तिन्ह तजा प्रान कर लोभा॥

दो०—बहु आयुध-धर सुभट सब भिरहिं प्रचारि प्रचारि।
व्याकुल किये भालु कपि परिघ त्रिसूलन्हि मारि॥४॥

भयआतुर कपि भागन लागे। जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे॥
कोउ कह कहँ अंगद हनुमंता। कहँ नल नील दुबिद बलवंता॥
निजदल बिकल सुना हनुमाना। पच्छिम द्वार रहा बलवाना॥
मेघनाद तहँ करइ लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई॥
पवन-तनय-मन भा अति क्रोधा। गरजेउ प्रबल-काल-सम जोधा॥
कूदि लंकगढ़ ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद कहुँ धावा॥
भंजेउ रथ सारथी निपाता। ताहि हृदय महुं मारेसि लाता॥
दुसरें सूत बिकल तेहि जाना। स्यंदन घालि तुरत गृह आना॥

दो०—अंगद सुना पवनसुत गढ़ पर गयउ अकेल।
समरबांकुरा बालिसुत तरकि चढ़ेउ कपिखेल ॥५॥

जुद्धविरुद्ध क्रुद्ध दोउ बानर। रामप्रताप सुमिरि उर अंतर॥
रावन भवन चढ़े दोउ धाई। करहिं कोसलाधीसदोहाई॥
कलस सहित गहि भवन ढहावा। देखि निसाचर-पति भय पावा॥
नारिबृंद कर पीटहिं छाती। अब दुइ कपि आये उतपाती॥
कपिलीला करि तिन्हहिं डेरावहिं। रामचन्द्र कर सुजसु सुनावहिं॥
पुनि कर गहि कंचन के खंभा। कहेन्हि करिय उतपात अरंभा॥
गरजि परे रिपुकटक मझारी। लागे मरदइ भुजबल भारी॥
काहुहि लात चपेटन्हि केहू। भजहु न रामहिं सो फल लेहू॥

दो०—एक एक सो मरदहिं तोरि चलावहि मुंड।
रावन आगे परहिं ते जनु फूटहिं दधिकुंड ॥६॥

महा-महा-मुखिया जे पावहि। ते पद गहि प्रभुपास चलावहिं॥
कहहिं बिभीषनु तिन्ह के नामा। देहिं रामु तिन्हहूँ निजधामा॥
खल मनुजाद द्विजामिषभोगी। पावहिं गति जो जाचत जोगी॥
उमा रामु मृदुचित करुनाकर। बयरुभाव सुमिरत मोहि निसिचर॥
देहिं परम गति सो जिय जानी। अस कृपालु को कहहु भवानी॥
अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमंद ते परम अभागी॥
अंगद अरु हनुमंत प्रवेसा। कीन्ह दुर्ग अस कह अवधेसा॥
लंका दोउ कपि सोहहिं कैसे। मथहिं सिंधु दुइ मंदर जैसे॥

दो०—भुजबल रिपुदल दलमलि देखि दिवस कर अंत।
कूदे जुगल बिगत-स्रम आये जहँ भगवंत ।।७।।

प्रभु पद कमल सीस तिन्ह नाये। देखि सुभट रघुपति-मन भाये ।।
राम कृपा करि जुगल निहारे। भये बिगतस्रम परम सुखारे ।।
गये जानि अंगद हनुमाना। फिरे भालु मरकट भट नाना ।।
जातुधान प्रदोषबल पाई। धाये करि दस-सीस-दोहाई ।।
निसिचर-अनी देखि कपि फिरे। जहँ तहँ कटकटाइ भट भिरे ।।
दोउ दल प्रबल प्रचारि प्रचारी। लरत सुभट नहिं मानहिं हारी ।।
महाबीर निसिचर सब कारे। नानाबरन बलीमुख भारे ।।
सबल जुगलदल समबल जोधा। कौतुक करत लरत करि क्रोधा ।।
प्राविट—सरद—पयोद घनेरे। लरत मनहुँ मारुत के प्रेरे ।।
अनिप अकंपन अरु अतिकाया। बिचलित सेन कीन्हि इन्ह माया।।
भयेउ निमिष महँ अति अँधियारा। बृष्टि होइ रुधिरोपलछारा ।।

दो०—देखि निबिड़ तम दसहुँ दिसि कपिदल भयेउ खभार।
एकहिं एकु न देखहिं जहँ तहँ करहिं पुकार ।।८।।

सकल मरमु रघुनायक जाना। लिये बोलि अंगद हनुमाना ।।
समाचार सब कहि समुझाये सुनत कोपि कपिकुंजर धाये ।।
पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा पावकसायक सपदि चलावा ।।
भयेउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं ग्यानउदय जिमि संसय जाहीं ।।
भालु बलीमुख पाइ प्रकासा धाये हरषि बिगत-स्रम-त्रासा ।।

हनूमान अंगद रनु गाजे । हांक सुनत रजनीचर भाजे ॥
भागत भट पटकहिं धरि धरनी । करहिं भालु कपि अद्भुत करनी ॥
गहि पद डारहिं सागर माहीं । मकर उरग झप धरि धरि खाहीं ॥

दो०—कछु मारे कछु घायल कछु गढ़ चले पराइ ।
गरजहिं भालु बलीमुख रिपु-दल-बल बिचलाइ ॥९॥

निसा जानि कपि चारिउ अनी । आये जहां कोसलाधनी ॥
राम कृपा करि चितवा सबहीं । भये बिगतस्रम बानर तबहीं ॥
उहां दसानन सचिव हँकारे । सब सन कहेसि सुभट जे मारे ॥
आधा कटकु कपिन्ह संहारा । कहहु बेगि का करिय बिचारा ॥
माल्यवंत अतिजरठ निसाचर । रावन मातपिता—मंत्री-बर ॥
बोला बचन नीति अतिपावन । सुनहु तात कछु मोर सिखावन ॥
जब तें तुम्ह सीता हरि आनी । असगुन होहिं न जाहिं बखानी ॥
बेद पुरान जासु जस गावा । रामबिमुख काहु न सुख पावा ॥

दो०—हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधुकैटभ बलवान ।
जेहि मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान ॥
कालरूप खल-बन-दहन गुनागार घनबोध ।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन बिरोध ॥१०॥

परिहरि बैरु देहु बैदेही । भजहु कृपानिधि परमसनेही ॥
ता के बचन बानसम लागे । करियामुख करि जाहि अभागे ॥
मूढ़ भयसि न त मरतेउं तोही । अब जनि नयन देखावसि मोही ॥

तेहि अपने मन अस अनुमाना । बध्यौ चहत एहि कृपानिधाना ॥
सो उठि कयउ कहन दुर्बादा । तब सकोप बोलेउ घननादा ॥
कौतुक प्रात देखियहु मोरा । करिहउँ बहुत कहउँ का थोरा ॥
सुनि सुतवचन भरोसा आवा । प्रीतिसमेत अंक बैठावा ॥
करत बिचार भयेउ भिनुसारा । लागे कपि पुनि चहूं दुआरा ॥
कोपि कपिन्ह दुरघट गढ़ु घेरा । नगर कोलाहल भयेउ घनेरा ॥
बिबिधायुधधर निसिचर धाये । गढ़ तें परबतसिखर ढहाये ॥

छंद—ढाहे महीधर-सिखर कोटिन्ह बिबिधबिधि गोला चले ।
घहरात जिमि पविपात गरजत जनु प्रलयके बादले ॥
मरकट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भये ।
गहि सयल तेहि गढ़ पर चलावहिं जहँ सो तहँ निसिचर हये ॥

दो०—मेघनाद सुनि स्रवन अस गढ़ पुनि छेंका आइ ।
उतरेउ बीर दुर्ग तें सनमुख चलेउ बजाइ ॥२१॥

कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता । धन्वी सकल-लोक-बिख्याता ॥
कहँ नल नील द्विविद सुग्रीवा । अंगद हनूमंत बलसींवा ॥
कहां बिभीषनु भ्राताद्रोही । आजु सठहि हठि मारउं ओही ॥
अस कहि कठिन बान संधाने । अतिसयक्रोध स्रवन लगि ताने ॥
सरसमूह सो छाड़ै लागा । जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा ॥
जहँ तहँ परत देखिअहिं बानर । सनमुख होइ न सके तेहि अवसर ॥
जहँ तहँ भागि चले कपि रीछा । बिसरी सबहि जुद्ध कै इच्छा ॥
सो कपि भालु न रन महँ देखा । कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेखा ॥

दो०—दस दस सर सब मारेसि परे भूमि कपि बीर।
सिंहनाद करि गरजा मेघनाद बलधीर ॥१२॥

देखि पवनसुत कटकु बिहाला। क्रोधवंत जनु धायेउ काला ॥
महासैल एक तुरत उपारा। अतिरिस मेघनाद पर डारा ॥
आवत देखि गयेउ नभ सोई। रथ सारथी तुरग सब खोई ॥
बार बार प्रचार हनुमाना। निकट न आव मरमु सो जाना ॥
रघुपति-निकट गयेउ घननादा। नाना भांति कहेसि दुर्वादा ॥
अस्त्र शस्त्र आयुध सब डारे। कौतुकहीं प्रभु काटि निवारे ॥
देखि प्रताप मूढ़ खिसियाना। करै लाग माया बिधि नाना ॥
जिमि कोउ करइ गरुड़ से खेला। डरपावइ गहि स्वल्प सपेला ॥

दो०—जासु प्रबल-माया-बिबस सिव बिरंचि बड़ छोट।
ताहि देखावइ निसिचर निज माया मतिखोट ॥१३॥

नभ चढ़ि बरपइ बिपुल अंगारा। महि तें प्रगट होहिं जलधारा ॥
नाना भांति पिसाच पिसाची। मारु काटु धुनि बोलहिं नाची ॥
बिष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा। बरपइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा ॥
बरपि धूर कीन्हेसि अँधियारा। सूझ न आपन हाथ पसारा ॥
कपि अकुलाने माया देखे। सब कर मरन बना येहि लेखे ॥
कौतुक देखि रामु मुसुकाने। भये सभीत सकल कपि जाने ॥
एक बान काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया ॥
कृपादृष्टि कपि भालु बिलोके। भये प्रबल रन रहहिं न रोके ॥

दो०—आयेसु मांगि राम पहिं अंगदादि कपि साथ ।
लछिमन चले सकोप अति बान सरासन हाथ ॥१४॥

छतज नयन उर बाहु बिसाला । हिमगिरि-निभ तनु कछुएक लाला ॥
इहां दसानन सुभट पठाये । नाना सस्त्र अस्त्र गहि धाये ॥
भूधर-नख बिटपायुध धारी । धाये कपि जय राम पुकारी ॥
भिरे सकल जोरिहि सन जोरी । इत उत जय इच्छा नहिं थोरी ॥
मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं । कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं ॥
मारु मारु धरु धरु धरु मारू । सीस तोरि गहि भुजा उपारू ॥
असि रव पूरि रही नव खंडा । धावहिं जहँ तहँ रुंड प्रचण्डा ॥
देखहिं कौतुक नभ सुरबृंदा । कबहुँक बिसमय कबहु अनंदा ॥

दो०—रुधिर गाड़ भरि भरि जमेउ ऊपर धूरि उड़ाइ ।
जनु अँगाररासिन्ह पर मृतकधूम रह्यो छाइ ॥ १५ ॥

घायल बीर बिराजहिं कैसे । कुसुमित किंसुक के तरु जैसे ॥
लछिमन मेघनाद दोउ जोधा । भिरहिं परस्पर करि अति क्रोधा ॥
एकहि एक सकहि नहिं जीती । निसिचर छल बल करइ अनीती ॥
क्रोधवंत तब भयउ अनंता । भंजेउ रथ सारथी तुरंता ॥
नाना बिधि प्रहार कर सेषा । राच्छस भयउ प्रानअवसेषा ॥
रावनसुत निजमन अनुमाना । संकट भयेउ हरिहि-मम प्राना ।

मेघनाद-वध

एहि विधि जलपत भयउ विहाना। चहुँ दुआर लागे कपि नाना॥
इत कपि भालु कालसम बीरा। उत रजनीचर अति-रन-धीरा॥
लरहिं सुभट निज निज जय हेतू। बरनि न जाइ समर खगकेतू॥

दो०—मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गयेउ अकास।
गर्जेउ अट्टहास करि भइ कपिकटकहि त्रास॥ १॥

सक्ति सूल तरवारि कृपाना। अस्त्र सस्त्र कुलिसायुध नाना॥
डारइ परसु परिघ पाषाना। लागेउ वृष्टि करइ बहु बाना॥
दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहुँ मघा मेघ झरि लाई॥
धरु धरु मारु सुनिअ धुनि काना। जो मारइ तेहि कोउ न जाना॥
गहि गिरि तरु अकास कपि धावहिं। देखहिं तेहि न दुखित फिरि आवहिं॥
अवघट घाट बाट गिरि कंदर। मायाबल कीन्हेसि सरपंजर॥
जाहिं कहाँ व्याकुल भये बंदर। सुरपति बंदि परेउ जनु मंदर॥
मारुतसुत अंगद नल नीला। कीन्हेसि बिकल सकल बलसीला॥
पुनि लछिमन सुग्रीवँ बिभीसन। सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जरतन॥
पुनि रघुपति सन जूझइ लागा। सर छाँड़इ होइ लागहिं नागा॥
व्याल–पास–बस भयेउ खरारी। स्वबस अनंत एक अविकारी॥
नटइव कपट चरित कर नाना। सदा स्वतन्त्र एक भगवाना॥
रनसोभा लगि प्रभुहिं बँधावा। नाग पास देवन्ह भय पावा॥

दो०—गिरिजा जासु नाम जपि मुनि काटहिं भवपास।
सो कि बँध तर आवइ व्यापक विस्वनिवास ॥ २ ॥

चरित राम के सगुन भवानी। तरकि न जाहिं बुद्धि बल बानी॥
अस विचारि ते तग्य विरागी। रामहिं भजहिं तर्क सब त्यागी॥
व्याकुल कटक कीन्ह घननादा। पुनि भा प्रगट कहइ दुर्बादा॥
जामवंत कह खल रहु ठाढ़ा। सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा॥
बूढ़ जानि सठ छाड़ेउँ तोही। लागेसि अधम पचारइ मोही॥
अस कहि तरल त्रिसूल चलावा। जामवंत कर गहि सोइ धावा॥
मारेसि मेघनाद कै छाती। परा भूमि घुरमित सुरघाती॥
पुनि रिसान गहि चरन फिरावा। महि पछारि निज बल देखरावा॥
बरप्रसाद सो मरइ न मारा। तब गहि पद लंका पर डारा॥
इहाँ देवरिषि गरुड़ पठावा। रामसमीप सपदि सो आवा॥

दो०—खगपति सब धरि खाये माया-नाग-बरूथ।
माया विगत भये सब हरषे बानरजूथ॥
गहि गिरि पादप उपल नख धाये कीस रिसाइ।
चले तमीचर बिकलतर गढ़ पर चढ़े पराइ ॥ ३ ॥

मेघनाद कै मुरछा जागी। पितहि विलोकि लाज अति लागी॥
तुरत गयेउ गिरि-वर कंदरा। करौं अजय मख अस मन धरा॥
इहाँ विभीषन मंत्र विचारा। सुनहु नाथ बल अतुल उदारा॥
मेघनाद मख करइ अपावन। खल मायावी देवसतावन॥
जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि। नाथ वेगि पुनि जीति न जाइहि॥

सुनि रघुपति अतिसय सुख माना। बोले अंगदादि कपि नाना॥
लछिमन संग जाहु सब भाई। करहु बिधंस जग्य कर जाई॥
तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही। देखि सभय सुर दुख अति मोही॥
मारेहु तेहि बल बुद्धि उपाई। जेहि छीजइ निसिचर सुनु भाई॥
जामवंत सुग्रीवँ बिभीषन। सेन समेत रहेउ तीनिउँ जन॥
जब रघुबीर दीन्ह अनुसासन। कटि निषंग कसि साजि सरासन॥
प्रभु प्रताप उर धरि रनधीरा। बोले घन इव गिरा गँभीरा॥
जौं तेहि आजु बधे बिन आवउँ। तो रघु-पति-सेवक न कहावउँ॥
जौं सत संकर करहिं सहाई। तदपि हतउँ रघु-बीर दोहाई॥

दो०—रघु-पति-चरन नाइ सिर चलेउ तुरंत अनंत।
अंगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमंत॥६॥

जाइ कपिन्ह सो देखा बैसा। आहुति देत रुधिर अरु भैंसा॥
कीन्ह कपिन्ह सब जग्य बिधंसा। जब न उठइ तब करहिं प्रसंसा॥
तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई। लातन्हि हति हति चले पराई॥
लेइ त्रिसूल धावा कपि भागे। आये जहँ रामानुज आगे॥
आवा परम क्रोध कर मारा। गरज घोररव बारहिं बारा॥
कोपि मरुतसुत अंगद धाये। हनि त्रिसूल उर धरनि गिराये॥
प्रभु कहँ छाड़ेसि सूल प्रचंडा। सर हति कृत अनंत जुग खंडा॥
उठि बहोरि मारुति जुबराजा। हतहिं कोपि तेहि घाउ न बाजा॥
फिरे बीर रिपु मरइ न मारा। तब धावा करि घोर चिकारा॥

आवत देखि क्रुद्ध जनु काला । लछिमन छाड़े बिसिख कराला ॥
देखेसि आवत पबिसम बाना । तुरत भयेउ खल अंतरधाना ॥
बिबिध बेष धरि करइ लराई । कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरिजाई ॥
देखि अजय रिपु डरपे कीसा । परम क्रुद्ध तब भयेउ अहीसा ॥
लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा । एहि पापहि मैं बहुत खेलावा ॥
सुमिरि कोसलाधीस-प्रतापा । सरसंधान कीन्ह करि दापा ॥
छाँड़ेउ बान मांझ उर लागा । मरनी बार कपट सब त्यागा ॥

दो०—रामानुज कहँ रामु कहँ अस कहि छाँड़ेसि प्रान ।
धन्य धन्य तव जननी कह अंगद हनुमान ॥७॥

बिनु प्रयास हनुमंत उठावा । लंकाद्वार राखि तेहि आवा ॥
तासु मरन सुनि सुर गंधर्बा । चढ़ि बिमान आये नभ सर्बा ॥
बरषि सुमन दुंदुभी बजावहिं । श्री रघुनाथ-बिमल-जसु गावहिं ॥
जय अनंत जय जगदाधारा । तुम्ह प्रभु सब देवन्ह निस्तारा ॥
अस्तुति करि सुर सिद्ध सिधाये । लछिमन कृपासिंधु पहिं आये ॥

गीतावली से

——

राग कान्हरा

तू दसकंठ भले कुल जायो।
तामहँ सिव-सेवा बिरंचिबर, भुजबल बिपुल जगत जस पायो॥
खर, दूषन, त्रिसरा, कबंध रिपु जेहि बाली जमलोक पठायो।
ताको दूत पुनीत चरित हरि सुभ संदेस कहन हौं आयो॥
श्रीमद नृप-अभिमान मोहबस जानत अनजानत हरि लायो।
तजि व्यलीक भजु कारुनीक प्रभु दै जानकिहि सुनहि समझायो॥
जाते तव हित होइ कुसल कुल अचल राज चलिहै न चलायो।
नाहिन रामप्रताप-अनल महँ ह्वै पतङ्ग परिहै सठ धायो॥
जद्यपि अंगद नीति परम हित कह्यो तथापि न कछु मन भायो।
तुलसिदास सुनि बचन क्रोध अति पावक जरत मनहुँ घृत नायो॥१॥

तैं मेरो मरम कछू नहिं पायो।
रे कपि कुटिल ढीठ पसु पाँवर ! मोहिं दास ज्यों डाटन आयो॥
भ्राता कुंभकरण रिपुघातक, सुत सुरपतिहि बंदि कर ल्यायो।
निज भुजबल अति अतुल कहौं क्यों कंदुक लौं कैलास उठायो॥
सुर नर असुर नाग खग किन्नर सकल करत मेरो मन भायो।
निसिचर रुचिर अहार मनुज तनु ताको जस खल मोहि सुनायो॥
कहा भयो बानर सहाय मिलि करि उपाय जो सिंधु बँधायो।
जो तरिहै भुज बीस घोरनिधि ऐसो को त्रिभुवन में जायो ?॥
सुनि दससीस-बचन कपि-कुञ्जर बिहँसि ईसमायहि सिर नायो।
तुलसिदास लंकेस कालबस गनत न कोटि जतन समझायो॥२॥

सुनु खल मैं तोहिं बहुत बुझायो।
एते मान सठ भयो मोहबस जानतहूँ चाहत बिष खायो॥
जगत-बिदित अति बीर बालि बल जानत हौं कियौं अब बिसरायो।
बिनु प्रयास सोउ हत्यो एक सर सरनागत पर प्रेम देखायो॥
पावहुगे निज करम जनित फल, भले ठौर हठि बैर बढ़ायो।
बानर भालु चपेट लपेटनि मारत तब ह्वै है पछितायो॥
हौं ही दसन तोरिबे लायक कहा करौं जौ न आयसु पायो।
अब रघुबीर बान बिदलित उर सोवहिगो रनभूमि सुहायो॥
अबिचल राज्य बिभीषन को सब जेहि रघुनाथ चरन चित लायो।
तुलसिदास यहि भाँति बचन कहि गरजत चल्यो बालि-नृप-जायो॥३॥

राग केदारा

कौतुक ही कपि कुधर लियो है।
चल्यो नभ नाइ माथ रघुनाथहि, सरिस न बेग बियो है ॥
देख्यो जात जानि निसिचर बिनु फर सर हयो हियो है।
पन्यो कहि राम, पवन राख्यौ गिरि पुर तेहि तेज पियो है ॥१॥
जाइ भरत भरि अंक भेंटि निज जीवन-दान दियो है।
दुख लघु लषन मरम-घायल सुनि, सुख बड़ो कीस जियो है ॥२॥
आयसु इतहि स्वामि-संकट उत, परत न कछू कियो है।
तुलसिदास बिहन्यो अकास सो कैसेकै जात सियो है ॥ ४ ॥

भरत सत्रुसूदन बिलोकि कपि चकित भयो है।
रामलषनरनजीति अवध आए कैधौं मोहिं भ्रम,कैधौं काहू कपट ठयो है
प्रेम पुलकि पहिचानि कै पदपदुम नयो है।
कह्यो न परत जेहि भाँति दुहूँ भाइन सनेह सों सो उर लाय लयो है ॥
समाचार कहि गहरु भो, तेहि ताप तयो है।
कुधरसहित चढ़ौबिसिष, बेगिपठवौं, सुनिहरिहियगरब गूढ़ उपयो है ॥
तीर तें उतरि जस कह्यो चहै, गुनगननि जयो है
धनि भरत धनिभरत ! करत भयो मगन मौन रह्यो मन अनुरागरयोहै॥
यह जलनिधि खन्यो, मथ्यो, लँघ्यो, बाँध्यो, अँचयो है
तुलसिदास रघुबीर-बंधु-महिमा को सिन्धु तरि को कबिपार गयो है ॥५॥

होतो नहिं जो जग जनम भरत को।
तौं कपि कहत कृपान-धार-मग चलि आचरत वरत को ?
धीरज-धरम-धरनि धर-धुरहू तें गुरु धुर धरनि धरत को ?
सब सद्गुन सनमानि आनि उर, अघ औगुन निदरत को ?
सिवहु न सुगम सनेह रामपद सुजननि सुलभ करत को।
सृजि निज जस-सुरतरु तुलसी कह अभिमत फरनि फरत को ॥६॥

सुनि रन घायल लषन परे हैं।
स्वामि-काज संग्राम सुभट सों लोहे ललकारि लरे हैं ॥
सुवन-सोक संतोप सुमित्रहि रघुपति-भगति वरे हैं।
छिन छिन गात सुखात छिनहिं छिन हुलसत होत हरे हैं ॥
कपि सों कहति सुभाय अंब के अंबक अंबु भरे हैं।
रघुनंदन विनु बंधु कुअवसर जद्यपि धनु दुसरे हैं ॥
'तात ! जाहु कपि सँग' रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु विधिवस सुढर ढरे हैं ॥
अंब-अनुजगति लखि पवनज भरतादि गलानि गरे हैं।
तुलसी सब समुझाइ मातु तेहि समय सचेत करे हैं ॥ ७ ॥

———

लंका-दहन

कवित्त

लाइ-लाइ आगि भागे बाल-जाल जहाँ तहाँ,
लघु ह्वै निबुकि गिरिमेरु में विलास भो।
कौतुकी कपीस कूदि कनक कँगूरा चढ़ि,
रावन भवन जाइ ठाढ़ो तेहि काल भो॥
तुलसी विराज्यो व्योम बालधी पसारि भारी,
देखे हहरात भट काल तें कराल भो।
तेज को निधान मानों कोटिक कृसानु भानु,
नख विकराल, मुख तैसो रिस-लाल भो॥१॥

बालधी बिसाल विकराल ज्वाल-जाल मानो,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधौं व्योम-वीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
वीर रस वीर तरवारि सी उघारी है॥

तुलसी सुरेस-चाप, कैधों दामिनी-कलाप,
कैधौं चलामेरुतें कृसानु-सरि भारी है।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
"कानन उजार्यो, अब नगर प्रजारी है" ॥२॥

जहाँ तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत,
"जरत निकेत धाओ धाओ लागि आगि रे।
कहाँ तात, मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी, भाभी,
छोटे छोटे छोहरा अभागे भोरे भागि रे॥
हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिप वृषभ छोरो,
छेरी छोरो, सोवै सो जगावो जागि जागि रे" ॥
तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
"बार बार कह्यौ, पिय कपि सों न लागि रे" ॥३॥

बड़ो विकराल वेष देखि, सुनि सिंह-नाद,
उठ्यो मेघनाद सविषाद कहै रावनो।
बेग जीत्यो मरुत प्रताप मारतंड कोटि,
कालऊ करालता बड़ाई जीतो बावनो॥
तुलसी सयाने जातुधान पछिताने मन,
"जाको ऐसो दूत सो साहिब अबै आवनो"।

काहू सों कुसल रोषे राम बामदेव हू पै,
बिषम बली सों बादि बैर को बढ़ाइबो ॥४॥

'पानी पानी पानी' सब रानी अकुलानी कहैं,
जाति हैं परानी, गति जानि गज चालि है।
बसन बिसारैं, मनि भूषन सँभारत न,
आनन सुखाने कहैं "क्यों हू कोऊ पालि है ?"
तुलसी मँदोवै मीजि हाथ धुनि माथ कहै,
"काहू कान कियो न मैं कह्यो केतो कालि है।"
बापुरो बिभीषन पुकारि बार बार कह्यो,
"बानर बड़ी बलाइ घने घर घालि है" ॥५॥

रानी अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिं,
सकैं न बिलोकि बेष केसरी-कुमार को।
मीजि-मीजि हाथ, धुनै माथ दससीस-तिय,
तुलसी तिलौ न भयो बाहिर अगार को॥
सब असबाब डाढ़ो, मैं न काढ़ो तैं न काढ़ो,
जिय की परी सँभार, सहन भँडार को।
खीझति मँदोवै स-बिषाद देखि मेघनाद,
"बयो लुनियतु सब याही दाढ़ीजार को" ॥६॥
एक करै धौंज, एक कहै काढ़ो सौंज,

एक आँजि पानी पी कै कहै, 'बनत न आवनो'
एक परे गाढ़े, एक डाढ़त ही काढ़े, एक
देखत हैं ठाढ़े कहैं 'पावक भयावनो'॥
तुलसी कहत एक "नीके हाथ लाए कपि,
अजहूँ न छाँड़े बाल गाल को बजावनो।
धाओ रे, बुझाओ रे, कि बावरे, हौ रावरे या
औरै आगि लागी न बुझावै सिंधु सावनो" ॥७॥

हाट बाट हाटक पिघिलि चलो घी सो घनो,
कनक-कराही लंक तलफति ताय सों।
नाना पकवान जातुधान बलवान सब,
पागि-पागि ढेरी कीन्ही भली भांति भाय सों॥
पाहुने कृसानु पवमान सो परोसों,
हनुमान सनमानि कै जेंवाये चित चाय सों।
तुलसी निहारि अरि नारि दै दै गारि कहैं,
"बावरे सुरारि बैर कीन्हों राम राय सों" ॥८॥

रावन सो राज रोग बाढ़त बिराट-उर,
दिन दिन बिकल सकल सुखरांक सो।
नाना उपचारि करि हारे सुर सिद्ध मुनि,
होत न बिसोक ओत पावै न मनाक सो।

राम की रजाय तें रसायनी समीर-सूनु,
उतरि पयोधि-पार सोधि सरवाक सो।
जातुधान बुट, पुटपाक लंक जातरूप,
रतन-जतन जारि कियो है मृगांक सो॥ ६॥
(कवितावली)

केशवदास

केशवदास का जन्म सन् १५५१ के लगभग हुआ था। वह वंश के सनाढ्य ब्राह्मण थे। केशवदास की गणना हिन्दी के ६ महाकवियों में की जाती है। प्रसिद्ध है कि महाराज बीरबल ने हर एक छन्द पर इन्हें छः लाख रुपया पुरस्कार में दिया था।

भूषण के अतिरिक्त हिन्दी के किसी अन्य कवि को अपनी कविता के कारण अपने जीवन काल में इतना सम्मान नहीं मिला, जितना केशवदास को मिला। ओड़छा राजदरबार में उनका बहुत आदर किया जाता था. यह भी कहा जाता है कि केशवदास के एक छन्द से प्रभावित होकर अकबर ने महाराज इन्द्रजीत पर किया गया एक करोड़ रुपयों का जुर्माना माफ़ कर दिया था

केशवदास संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। ३५ वर्ष की आयु में उन्होंने कविता करना प्रारम्भ किया. सन १६१५ से

लगभग उनका देहान्त हुआ। उन्होंने कुल मिलाकर सात ग्रन्थों की रचना की—रसिक प्रिया, विज्ञान गीता, कविप्रिया, रामचन्द्रिका, वीरसिंह देव चरित, जहांगीर चन्द्रिका और नखशिख। इनमें रसिक प्रिया और रामचन्द्रिका विशेष लोकप्रिय हुईं। उनके ग्रन्थों में वीर-रस का अच्छा परिपाक हुआ है। कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—

———

अङ्गद को सन्देश

"अंगद जीति इन्हें गहि ल्याओ ;
कै अपने बल मारि भगाओ ।
वेगि बुझावहु चित्त-चिता को ;
आजु तिलोदक देहु पिता को ॥ १ ॥
"तब दौरिकै बान विभीषन लीन्हो ;
लव ताहि विलोकत ही हँसि दीन्हों ॥२॥

लव द्वारा विभीषण का उपहास

लव—आउ विभीषन तू रन-दूषन ;
एक-तुही कुल-को कुलभूषन ॥ ३ ॥
जूझि जुरे, जे भले भए जी के ;
सत्रुहि आइ मिले तुम नीके ॥ ४ ॥
देववधू जबहीं हरि ल्यायो ;
क्यों तबहीं तजि ताहि न आयो ? ॥ ५ ॥
यों अपने जिय के डर आए ;
छुद्र, सबै कुल-छिद्र बनाए ॥ ६ ॥
जेठो भैया, अन्नदा, राजा, पिता समान,
ताकी तै पतनी करी पुत्री मातु-समान ॥ ७ ॥
को जानै के बार तू कही न ह्वै है माय ;
सो तैंने पतनी करी सुनु पापिनी के राय ॥ ८ ॥

सिगरे जग माँझ हँसावत है ;
रघुवंसिन पाप नसावत है ॥ ९ ॥
धिक तो कहँ तू अजहूँ जु जियै ;
खल, जाय हलाहल क्यों न पियै ? ॥१०॥

कछु है अब तो कहँ लाज हिए ;
कहि कौन विचार हथ्यार लिए ? ॥११॥
अब जाइके रोप कि आगि जरौ ;
गर बाँधिकै सागर बूड़ि मरौ ॥१२॥
कहा कहौं हौं भरत को जानत है सब कोइ ,
तो-सो पापी संग मैं, क्यों न पराजय होइ ॥१३॥

"भूतल-के-इन्द्र भूमि बैठे हुते रामचन्द्र
मारिच-कनक-मृगछालहि बिछाए जू ;
कुंभहर कुम्भकर्न-नासाहर गोद-सीस
चरन अकंप-अच्छ-अरि-उर लाए जू ;
देवांतक, नरांतक त्यों ही मुसक्यात बीर
विभीषन बैन तन कान रुख वाए जू ;
मेघनाद-मकराच्छ-महोदर-प्रानहर
बान त्यों विलोकत परम सुख पाए जू ॥१४॥

जिन हाथन हठि हरपि हनत हरिनी नृपनंदनि ;
तिन न करत संहार कहा मदमत्त गयंदनि ?

जिन बेधत सुख लच्छ-लच्छ नृपकुँअर, कुँअरनि;
तिन बाननि बाराह, बाघ मारत नहिं सिंहनि ?
नृप-नाथ नाथ दसरथ, सुनिय, अकथ कथा यह मानिए,
मृगराज राम-कुल-कलस अब बालक वृद्ध न जानिए ॥१५॥

रावण—

सक्र को अखर्व गर्व गंज्यो ज्यहि पर्वतारि,
जीत्यो है सुपर्व सर्व भाजे लै लै अंगना,
खंडित अखंड आसु कीन्हो है जलेस-पासु,
चन्दन सों चन्द्रिका सों कीन्ही चन्द-बंदना।
दंडक में कीन्हो कालदंड हू को मान खंड,
मानो कीन्ही काल ही की कला-खंड-खंडना;
'केसव' कोदंड विस-दंड ऐसे खंडे अब
मेरे भुज-दंडन की बड़ी है विडंबना ॥१६॥

बाण—

हौं जग-हीं-जग पूजन जात पिता-पद पावन पाप प्रनासी;
देखि फिरौं नव-हीं-नव रावन मानौं रसातल के जे विलासी
लै अपने भुजदंड अखंड करौं छिति-मंडल छत्र-प्रभा-सी;
जानै को 'केसव' केतिक बार मैं सेस के सीसन दीनी उसासी ॥१७॥
कैटभ-सो, नरकासुर-सो पल मैं मधु-सो, मुर-सो ज्यहि मार्यो
लोक चतुर्दस-रच्छक 'केसव' पूरन बेद-पुरान बिचार्यो।

श्री-कमला-कुच-कुंकुम-मंडित पंडित देव-अदेव निहार्यो;
सो कन माँगन को वलि पै करतारहु ने कर तार पसार्यो ॥१

रावण—

भौंर ज्यों भँवत भूत वासुकी-गनेस-जुत,
मानौ मकरंद-बुंद माल गंगजल की;
उड़त पराग पट-नाल-सी विसाल बाहु,
कहा कहौं 'केसौदास' सोभा पल-पल की।
आयुध सघन सर्वमंगलासमेत सर्व,
पर्वत उठाय गति कीन्ही है कमल की;
जानत सकल लोक, लोकपाल, दिगपाल,
जानत न वान, बात मेरे बाहु-बल की ? ॥१६॥

खंडित मान भयो सबको नृप-मंडल हारि रह्यो जगती को;
व्याकुल बाहु, निराकुल बुद्धि, थक्यो बल विक्रम लंकपती को
कोटि उपाव किए कहि 'केसव' केहूँ न छाँड़त भूमि रती को;
भूरि विभूति प्रभाव सुभावहि ज्यों न चले चित जोगि-जती को॥२

परशुराम संवाद—

वर बान सिखीन असेष समुद्रहि सोखि सखा सुख ही तरिहौं;
पुनि लंकहि औटि कलंकित कै फिरि पंक कलंकहि की भरिहौं।
भल भूँजिकै राकस खाक कै दुख दीरघ देवन को हरिहौं।
सितिकंठ के कंठन को कठुला दसकंठ के कंठन को करिहौं ॥२

अखंड हैहयादि राज दंड-मान जानिए;
अखंड कीर्ति-लेय भूमि देय-मान मानिए।
अदेव देव जे अभीत रक्षमान लेखिए;
अमेय तेज भर्ग भक्त भार्गवेस देखिए ॥२२॥

टूटे टूटनहार तरु वायुहि दीजत दोष;
त्यों अब हर के धनुष को हम पर कीजत रोष।
हम पर कीजत रोष, काल गति जानि न जाई;
होनहार ह्वै रहै मिटै मेटे न मिटाई।
होनहार ह्वै रहै मोह-मद सबको छूटै;
होइ तिनूका बज्र, बज्र तिनूका ह्वै टूटै ॥२३॥

'केसव' हैहयराज को मांसु हलाहल कौरन खाय लियो रे;
ता लगि मेद महीपन को घृत घोरि दियो, न सिरानो हियो रे।
खीर षडानन को मद पूरन, सो पल में करि पान लियो रे;
तौ लौं नहीं सुख जौं लौं न तू रघुबंस को सोनु-सुधा न पियो रे ॥२४॥
कंठ कुठार लसै अब हार कि फूलो असोक ससोक समूरो;
कै चितसारी चढ़े कि चिता तन चन्दन चित्र कि पावक पूरो।
लोक मै लोक बड़ो अपलोक सु 'केसवदास' जु होऊ सुहोऊ;
विप्रन के कुलको भृगुनंदन, सूरन के कुल सूर न कोऊ ॥२५॥

मुनि सकल लोकगुरु जामदग्नि
तप बिसिख असेषन की जु अग्नि

सब बिसिख छाँड़ि सहिहौं अखंड ;
हर-धनुष करयो जिन खंड-खंड ॥२६॥
भगन भयो हर-धनुष साल तुमको अब सालै ;
वृथा होइ विधि-सृष्टि, ईस आसन ते चालै ।
सकल लोक संहरहु, सेष सिर ते धर डारो ;
सप्तसिंधु मिलि जाहिं, होहि सब ही तम भारो ।
अति अमल जोति नारायनी कहि 'केसव' बुझि जाहि बरु ;
भृगुनंद, सँभारु कुठार, मैं कियो सरासनजुक्त सरु ॥२७॥
राम राम जब कोप कर्‌यो जू लोक-लोक भय भूरि भर्‌यो जू ;
बामदेव आपुन तब आए रामदेव दोनों समुझाए ॥२८॥

× × × ×

जाके रथाग्र पर सर्प-ध्वजा विराजै ;
श्रीसूर्य-मंडल-विडंबन जोति साजै ।
आखंडलीय वपु जो तनत्रानधारी ;
देवांतकै सु सुरलोक विपत्तिकारी ॥२९॥
जो हंसकेतु, भुजदंड निषंगधारी ;
संग्राम सिन्धु बहुधा अवगाहकारी ।
लीन्हीं छँड़ाइ जेहि देव-अदेव-बामा ;
सोई खरात्मज बली मकराच्छ-नामा ॥३०॥

× × × ×

हन्यो विघ्नकारी बली बीर बामै ;

नहीं छाँड़ि दीन्हों महामानमानी ।

उठ्यो सो गदा लै महा लंक-बासी;

गए भाजिकै सर्व शाखा-विलासी ॥४१॥

× × × ×

क्रुद्ध होइ जहाँ भाँति ऐसी करै, नाहिं नाही दिसा रोकि राखै तहीं;
आपने अस्त्र लै शस्त्र काहू सबै नाहिं केहू कहूँ घाव लागै नहीं।
दौरि सौमित्रि लै बान को दंड ज्यों खंड खंडी भुजा धीर-छत्रावली;
सैल-शृंगावली छोड़ि मानौं उड़ी एक ही बेर कै हंस-वंशावली ॥४२॥
लच्छन सुभ-लच्छन बुद्धि-विचच्छन रावन सों रिस छोड़ि दई;
पद पालनि छूटै जे सिर खंडै ते फिरि मंडै सोभनई।
जदपि नर पंडित गुन-गन मंडित रिपुबल-खंडित भूलि रहे;
तजि मन-बच-कायक सूर-सहायक रघुनायक सों बचन कहे ॥४३॥
ठाढ़ो रन गाजत बेहूँ न भाजत तन-मन लाजत सब लायक;
सुनि श्री रघुनंदन मुनि-जनबंदन दुष्ट-निकंदन सुखदायक।
अब टरै न टारयो मरै न मारयो हौं हठि हारयो धरि सायक;
रावन नहिं मारत, देव पुकारत है अति आरत जगनायक ॥४४॥

× × ×

जेहि सर मधु, मद, मर्दि महासुर मर्दन कीन्हेउ
मारेउ कर्कस नरक, संख हनि संख जु लीन्हेउ
निष्कंटक सुर-कटक करयो कैटभ-वपु खंड्यो,

खर, दूषन, त्रिसिरा, कबंध, तरु-खंड विहंड्यो।
सह कुंभकर्न ज्यहि संहर्यो पल न प्रतिज्ञा ते टर्यो;
तेहि बान प्रान दसकंठ के कंठ दसौं खंडित कर्यो ॥४५॥

× × × ×

राघव की चतुरंग चमू चय धूरि उठी जल हू थल छाई;
मानो प्रताप-हुतासन धूम सु, केसवदास, अकास न माई।
मेटिकै पंच प्रभूत किधौं विधि रेनुमई नव रीति चलाई;
दुःख-निवेदन को भव-भार को भूमि किधौं सुरलोक सिधाई ॥४६॥

———

पृथ्वीराज

— —

अकबर के दरबारी कवि पृथ्वीराज बीकानेर के राजा रायसिंह के भाई थे। अकबर ने उन्हें कविराज की उपाधि दे रक्खी थी। बरसों तक वह अकबर के दरबार में रहे। उसके बाद कहा जाता है कि कभी नौरंग के मेले के अवसर पर अकबर ने उनकी पत्नी किरणमयी को बुरी निगाह से देखा। किरणमयी ने उस अवसर पर असीम साहस दिखाया। अकबर यदि रानी किरणमयी से दया-भिक्षा न मांगता तो शायद वह उसका प्राणान्त ही कर देती।

इन्हीं दिनों महाराणा प्रतापसिंह ने अपने बरसों के निर्वासित जीवन से तंग आकर अकबर के पास सन्धि का प्रस्ताव भेज दिया। बरसों से वह जंगलों में भटकते फिरते थे। उन्हें तथा उनके परिवार को भोजन तक भी नसीब न होता था। उनके देखते-देखते एक बार जंगली बिलाव उनकी लड़की के हाथ से उसकी रोटी छीन ले गये। अनेक दिनों के बाद बालिका को वह रोटी मिली

खर, दूषन, त्रिसिरा, कबंध, तरु-खंड बिहंडि
सह कुंभकर्न ज्यहि संहरयो पल न प्रतिज्ञा ते ट
तेहि बान प्रान दसकंठ के कंठ दसौं खंडित क

× × ×

राघव की चतुरंग चमू चय धूरि उठी जल हू
मानौ प्रताप-हुतासन धूम सु, केसवदास, अका
मेटिके पंच प्रभूत किधौं विधि रेनुमई नव री
दुःख-निवेदन को भव-भार को भूमि किधौं

धर वाँका दिन पाधरा, मरद न मूकै माण।
घणाँ नरिंदा घेरियो रहै गिरिंदाँ राण ॥१॥

जिसकी भूमि अत्यन्त विकट है, और दिन अनुकूल है, जो वीर अभिमान को नहीं छोड़ता वह महाराणा बहुत राजाओं से घिरा हुआ पहाड़ी में निवास करता है।

पातल राण प्रवाड़ मल, वाँकी घड़ा विभाड़।
खूँदाड़ै कुण है खुराँ; तो ऊभाँ मेवाड़ ॥२॥

हे विकट सेनाओं के विध्वंस करने वाले और युद्ध में मल्ल महाराणा प्रतापसिंह! तेरे खड़े रहते मेवाड़ को घोड़ों के खुरों से खुँदानेवाला कौन है?

माई! एहा पूत जण, जेहा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओधकै, जाण सिराणै साँप ॥३॥

हे माता! तू ऐसा पुत्र उत्पन्न कर, जैसा राणा प्रताप है। जिसको अकबर सिरहाने का साँप जानकर चौंक उठता है।

अइरे अकबरियाह, तेज तुहालो तुरकड़ा।
नम नम नीसरियाह, राण बिना सह राजवी ॥४॥

हे अकबर! तेरा तेज देखकर बड़ा आश्चर्य होता है, जिसके सामने महाराणा के सिवाय सब राजा लोग झुक गये।

पटकूँ मूछाँ पागा, कै पटकूँ निज तन करद।
दीजै लिख दीवाग़, इग़ दो महली बात इक ॥१४॥

हे दीवान! मैं अपनी मूँछ पर हाथ फेरूँ, या अपनी शरीर को तलवार से काट डालूँ, इन दोनों में से एक बात लिख दीजिये।

राठौर-वीर पृथ्वीराज की कविता पढ़कर प्रताप को साहस हुआ कि मानों उन्हें दश हजार राजपूतों की सहायता दी गई। वे अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ हुए। पत्र के उत्तर में महाराणा प्रताप ने नीचे लिखे दोहे भेजे थे—

तुरुक कहासी मुख पतो, इग़ तन सूँइकलिङ्ग।
ऊगै जाहीं ऊगसी, प्राची बीच पतंग ॥ १ ॥

भगवान् एकलिंग की शपथ है, इस शरीर से अर्थात् प्रताप के मुख से बादशाह तुरुक ही कहलावेगा और सूर्य का उदय जहाँ से होता है, वहीं पूर्व ही में होगा।

खुसी हूँत पीथल कमध, पटको मूछाँ पाग़।
पछटग़ है जेत्त पतो, कमला सिर केवाग़ ॥ २ ॥

हे वीर पृथ्वीराज, आप प्रसन्न होकर मूछों पर हाथ फेरिये। जब तक प्रतापसिंह है, तलवार को यवनों के सिर पर ही जानिये।

साँग मूँड़ महसी मको, सम जस जहर सवाद।
भड़ पीथल जीतो भलाँ, वैग़ तुरक सूँ वाद ॥ ३ ॥

राणा प्रताप सिर पर भाला सहेगा, क्योंकि बराबर वाले का यश विष के समान होता है। हे भट पृथ्वीराज! आप तुरुक से बातों के युद्ध मे विजय पावे।

महाकवि भूषण

भूषण का जन्म सन् १६१३ में कानपुर जिले के तिकवा
नामक ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम रत्नाक
त्रिपाठी था। रत्नाकर त्रिपाठी स्वयं एक सुशिक्षित ब्राह्मण थे
उनके चार पुत्र थे—चिन्तामणि, भूषण, मतिराम और नील-
कण्ठ। ये चारों भाई हिन्दी के प्रसिद्ध कवि हुए हैं। इन
में भूषण सर्वश्रेष्ठ थे. मतिराम का दूसरा स्थान है
चिन्तामणि का तीसरा और नीलकण्ठ को उतनी अधिक प्रसिद्धि
नहीं मिली।

वीररस की दृष्टि से भूषण हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ महाकवि
हुए हैं। उन्हें अपनी कविता के सामर्थ्य पर जो अगाध विश्वास
था, उसका पता इसी एक किंवदन्ती से मिलता है कि जब वह
औरंगजेब के दरबार में राजकवि पद के उमीदवार बनकर गए
और सम्राट ने उन्हें कविता सुनाने के लिए कहा, तो
उन्होंने सम्राट से निवेदन किया कि—"महाराज अपने हा
धो लीजिए।"

भूषण की इस बेतुकी सी बात पर चकित होकर औरंगजेब ने पूछा—"यह किस लिए ?"

"यह इसलिए, महाराज कि मेरी कविता सुनते सुनते अवश्य आपके हाथ अपनी मोंछों तक पहुँच जाएँगे। मैं मालूम नहीं कि इस वक्त पवित्र हैं या नहीं।"

नए कवि की यह बात औरंगज़ेब को एक उद्दण्डता के समान जान पड़ी। उसने कहा—"अच्छा मैं हाथ धो लेता हूँ, परन्तु यदि तुम्हारी कविता में वह प्रभाव न हुआ तो मैं तुम्हारा गला कटवा दूँगा।"

"अवश्य महाराज।" कह कर भूषण अपनी कविता सुनाने लगे। पहले ही कवित्त पर औरंगज़ेब के हाथ ऊपर पहुँचने को उतावले होने लगे। परन्तु औरंगज़ेब ने संयम रक्खा। परन्तु दूसरे कवित्त पर उससे न रहा गया। अनायास ही, सीधा बैठकर, वह अपनी मोंछों पर ताव देने लगा।

उस दिन से औरंगज़ेब भूषण का बहुत ही सम्मान करने लगा।

कहा जाता है कि अपनी युवावस्था के प्रारम्भ में भूषण बिलकुल अकर्मण्यों का-सा जीवन बिताते थे। न कुछ करना न धरना। सिर्फ खा-पी लेना। उनके बड़े भाई चिन्तामणि राजकवि थे और इस बात का उनकी भावज को बड़ा घमण्ड था। एक दिन जब युवक भूषण भोजन करने बैठे तो उन्होंने नमक माँगा।

भावज उनके निठल्लेपन से बहुत खिझी हुई थी। उसने चिढ़कर ताना दिया—"क्या नमक कमाकर भी लाते हो, या सिर्फ़ माँगना जानता है।"

प्रसिद्ध है कि भोजन का थाल उसी तरह छोड़ कर भूषण अपने घर से चल दिए। तब उन्होंने विद्याभ्यास के लिए कठोर परिश्रम किया। चित्रकूट निवासी सदुराम को भूषण ने अपना गुरु धारण किया। अपनी प्रतिभा के बल पर बहुत शीघ्र वह बहुत श्रेष्ठ कवि बन गए और तब इनके गुरु ने इन्हें कवि-भूषण की उपाधि प्रदान की।

औरंगज़ेब का हिन्दू द्वेष देखकर भूषण का हृदय बहुत खिन्न हो चुका था। इन्हीं दिनों शिवाजी के विचार तथा आचरण के सम्बन्ध में अनेक बातें सुनकर भूषण कवि उनकी ओर बहुत ज़ोर से आकृष्ट हुए।

शिवाजी के लौट जाने के कुछ दिनों के बाद एक दिन औरंगज़ेब ने अपने दरबार के कवियों से कहा—"तुम लोग सदा मेरी प्रशंसा के गीत ही गाया करते हो। वह सब कहीं झूठी बुराई तो नहीं होती? मैं अपने प्रति तुम्हारे हृदय के सच्चे भाव जानना चाहता हूँ।"

बाकी सब कवियों ने तो कहा कि "महाराज आप में कोई दोष छू तक भी नहीं गया।"

परन्तु भूषण से नहीं रहा गया। उन्होंने उसी समय औरंगज़ेब

की सच्ची जीवनी के सम्बन्ध में अनेक पद बना डाले जिनमें उसके पिता को कैद करने तथा भाइयों का वध करने का ज़िक्र भी था। एक कवित्त का अन्तिम पद था—"सौ-सौ चूहे खायके बिलारी चली हज्ज को !"

भूषण के मुँह से यह सुनकर औरंगज़ेब बहुत बिगड़ा। वह उन पर उसी समय तलवार लेकर झपटा, परन्तु दरबारियों तथा मन्त्रियों के समझाने पर वह सँभल गया। भूषण समझ गया कि अब यहाँ खैर नहीं। वह उसी समय शिवाजी के पास रहने को रवाना होगए।

कहा जाता है कि शिवाजी की राजधानी में भूषण कवि सायंकाल को पहुँचे और थकी हुई-सी दशा में भवानी के मन्दिर की सीढ़ियों पर जा बैठे। थोड़ी ही देर में एक भद्र सज्जन पूजा के निमित्त मन्दिर में पहुँचे। भूषण ने यह समझ कर कि यह कोई राजदरबारी हैं, उन्हें प्रणाम किया।

उस भद्र पुरुष ने पूछा—"आप कहाँ से आ रहे हैं ?"

"दिल्ली से।"

"यहाँ किस उद्देश्य से आना हुआ है ?"

"महाराज छत्रपति शिवाजी से मिलने की इच्छा से।"

"उनसे मिल चुके ?"

"नहीं, मैं अभी पहुँचा हूँ। यदि आप इस सम्बन्ध मे मेरी सहायता कर सकें तो बड़ी कृपा हो।"

"अवश्य। परन्तु आपको उनसे काम क्या है?"

"मैं एक कवि हूँ, और उनका आश्रय पाना चाहता हूँ।"

यह सुनकर शायद उस भद्र पुरुष को भी कविता सुनने की उमंग उत्पन्न हुई। उन्होंने कहा—"मैं आपको महाराज के पास एक शर्त पर ले जाऊँगा कि आप इसी समय कोई कविता मुझे भी सुनाएँ।

भूषण का क्या बिगड़ता था। वह तैयार हो गए और छत्रपति शिवाजी की प्रशंसा में उन्होंने एक कवित्त पढ़ा। वह सज्जन बड़ी तन्मयता और प्रसन्नता के साथ उस कवित्त को सुनते रहे। कवित्त समाप्त होने पर उन्होंने प्रार्थना की—"एक बार और!"

भूषण ने दुबारा वही कवित्त सुना दिया। उन सज्जन ने पुनः आग्रह किया। भूषण ने एक बार और सुना दिया। परन्तु वह सज्जन बार-बार वही आग्रह करने लगे। उनके अनुरोध पर सत्रह बार तो भूषण ने उस कवित्त को दोहरा दिया। उसके बाद तंग आ कर उन्होंने कहा—"अब आप चाहें, कोई और कवित्त भले ही सुन लें। परन्तु वह कवित्त मैं और नहीं सुना सकूँगा।"

वह सज्जन नाराज नहीं हुए और भूषण को उसके कार्य में सहायता देने का आश्वासन दे, चले गए।

दूसरे दिन महाराज से निमन्त्रण पाकर जब कवि भूषण राजदरबार पहुँचे तब यह देख कर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि छत्रपति महाराज शिवाजी स्वयं वही व्यक्ति थे, जिन्हें

जिसकी शक्ति को उन्होंने कोई सरदार समझा था। महाराज ने भूषण को अपना राजकवि बना लिया और उन्हें बावन लाख रुपया, बावन गाँव, बावन हाथी, बावन घोड़े और बावन रथ इनाम में दिए।

यह भी प्रसिद्ध है कि यहाँ से एक लाख रुपये का सामान खरीद कर कवि भूषण ने अपनी भाभी के पास भेजा।

भूषण ने कुल मिलाकर चार ग्रन्थों की रचना की - शिवराज भूषण, भूषण हजारा, भूषण उल्लास और दूषण उल्लास।

इनमें से शिवराज भूषण के अतिरिक्त और अन्य ग्रन्थों के बहुत कम छन्दमात्र ही आज उपलब्ध होते हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने इन सम्पूर्ण छन्दों को एक साथ 'भूषण ग्रन्थावली' के नाम से प्रकाशित किया है। उसमें से कतिपय चुने हुए छन्द यहाँ उद्धृत किए जा रहे हैं।

भूषण को हिन्दुओं का जातीय कवि कहा जा सकता है। उन्होंने युद्धों का जो वर्णन किया है, उसमें विपक्षियों के लिए कठोर शब्दों का आना स्वाभाविक ही था। परन्तु भूषण के उन वर्णनों को कवि-की कल्पना समझ कर उदार दृष्टि से देखना चाहिए।

संक्षिप्त भूषण

---

[१]

जा दिन जनम लीन्हों भूपर भुसिल भूप,
ताही दिन जीत्यो अरि उर के उछाह को।
छठी छत्रपतिन को जीत्यो भाग अनायास,
जीत्यो नामकरन में करन-प्रवाह को॥
भूषन भनत बाल लीला गढ़ कोट जीत्यो,
साहि के सिवाजी, करि चहूँ चक्र चाह को।
बीजापुर गोलकुण्डा जीत्यो लरिकाइ ही में,
ज्वानी आये जीत्यो दिलीपति पातसाह को॥

[२]

पर साहि बने सिवराज सुरेस की ऐसी सभा सुभ साजै।
कवि भूषन जम्पत है, लखि सम्पति को अलकापति लाजै॥
मधि तीनहु लोक की दीपति, ऐसो बड़ो गढ़राज बिराजै।
पताल सी माची मही, अमरावति की छबि ऊपर छाजै॥

[३]

मनिमय महल्ल सिवराज के इमि रायगढ़ में राजहीं।
लखि जच्छ किन्नर सुर असुर गन्धर्व हौंसनि साजहीं॥
उत्तङ्ग मरकत मन्दिरन मधि बहु मृदङ्ग जु बाजहीं।
घन-समय मानहुँ घुमरि करि घन घनपटल गलगाजहीं॥

[४]

मुकतान की झालरनि मिलि मनि लाल छज्जा छाजहीं।
सन्ध्या समय मानहुँ नखतगन लाल अंबर राजहीं॥
जहँ-तहाँ ऊरध उठे हीरा किरन घन समुदाय हैं।
मानो गगन तम्बू तन्यो ताके सपेत तनाय हैं॥

[५]

भूषन भनत जहँ परसिकै मनि पुहुपरागन की प्रभा।
प्रभु पीतपट की प्रगट पावत सिंधु-मेघन की सभा॥
सुख नागरिन के राजहीं कहुँ फटिक महलन संग मैं।
विकसन्त कोमल कमल मानहुँ अमल गंग-तरङ्ग मैं॥

[६]

आए दरबार बिललाने छरीदार देखि,
जापता करनहारे नेकहू न मनके।
भूषन भनत भौंसिला के आय आगे ठाढ़े,
बाजे भये उमराय तुजुक करन के॥

साहि रह्यो जकि, सिवसाहि रह्यो तकि,
और चाहि रह्यो चकि बने ब्यौंत अनबन के।
ग्रीषम के भानु सो खुमान को प्रताप देखि,
तारे सम तारे गये मूँदि तुरकन के॥

[७]

ाय रही जितही तितही अतिही छवि छीरधि रंग करारी।
ूषन सुद्ध सुधान के सौधनि सोधति सी धरि ओप उज्यारी॥
ों तम तोमहिं चाविकै चन्द चहूँ दिसि चाँदनी चारु पसारी।
ज्यों अफ़ज़ल्लहि मारि मही पर कीरति श्री सिवराज बगारी॥

[८]

तो सम हो सेस, सो तो बसत पताल लोक,
ऐरावत गज, सोतो इन्द्रलोक सुनिए।
दुरे हंस मानसर, ताहि मैं कैलास धर,
सुधा सरवर सोऊ छोड़ि गयो दुनिए॥
सूर दानी सिरताज महाराज सिवराज,
रावरे सुजस सम आजु काहि गुनिए।
भूषन जहाँ लौं गनौं तहाँ लौं भटकि हार्यो,
लखिए कछू न केती बातैं चितै चुनिए॥

[६]

इन्द्र जिमि जम्भ पर, बाड़व सुअम्भ पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुल-राज है।

पौन बारिवाह पर, सम्भु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है॥
दावा द्रुम दण्ड पर, चीता मृग झुण्ड पर,
भूषन बितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम-अंश पर, कान्ह जिमि कंस पर,
यों मलेच्छ-बंस पर सेर सिवराज है॥

[१०]

कलिजुग जलधि अपार, उद्ध अधरम्म उम्मिमय।
लच्छनिलच्छ मलिच्छ कच्छ अरु मच्छ मगरचय॥
नृपति नदी-नद-बृन्द होत जाको मिलि नीरस।
भनि भूषन सब भुम्मि घेरि किन्निय सुअप्प बस॥
हिन्दुवान पुन्यगाहक-बनिक, तासु निबाहक साहिसुव।
बर बादबान किरबान धरि, जस जहाज सिवराज तुव॥

[११]

सिंह थरि जाने बिन जावली जंगल हठी,
भठी-गज एदिल पठाय करि भटक्यौ।
भूषन, भनत देखि भभरि भगाने सब,
हिम्मति हिए मैं धरि काहुवै न हटक्यौ॥
साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा,
मदगल अफजलै पंजाबल पटक्यौ।

तुरकान मलिन कुमुदिनी करी है हिन्दु-
वान नलिनी खिलायो विविध विधान सों।
चारु सिव नाम को प्रतापी सिव साहि-सुव,
तापी मव भूमि यों कृपान-भासमान सों॥

[१५]

कवि कहैं करन, करन-जीत कमनैत,
अरिन के उर माहिं कीन्हो इमि छेव हैं।
कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसो
और धराधरन को मेटो अहमेव है॥
भूपन भनत महाराज सिवराज तेरो,
राज-काज देखि कोऊ पावत न भेव है।
कहरी यदिल, मौज-लहरी कुतुब कहै।
वहरी निज़ाम के जितैया कहैं देव है॥

[१६]

'पीय पहारन पास न जाहु'—यों तीय बहादुर सो कहैं सोपैं।
वन्दि सइस्तखहूँ को कियो जसवन्त से भाऊ करन्न से दोपैं॥
कौन बचैहै नवाब! तुम्हैं भनि भूपन, भौंसिला भूप के रोपैं।
सिंह सिवा के सुवीरन सों गो अमीर न वाँच गुनीजन दोपैं॥

[१७]

दानव आयो दगा करि जावली दीह भयारो महामद भार्यो
भूपन वाहुवली सरजा तेहि भेंटिवे को निरसंक पधार्यो॥

बीछू के घाय गिरे अफजल्लहि ऊपर ही सिवराज निहार्यो ।
दाबि यों बैठो नरिन्द अरिन्दहि मानो मयन्द गयन्द पछार्यो ॥

[१८]

साहितनै सिवसाहि निसा में निसाँक लियो गढ़सिंह सौहानौ ।
राठिवरो को सँहार भयो लरिकै सरदार गियो उदै भानौ ॥
भूषन यों घमसान भो भूतल घेरत लोथिन मानों मसानौ ॥
ऊँचे सुछज्ज छटा उचटी प्रगटी परभा परभात की मानौ ॥

[१६]

दुरजन-दार भजि भजि वेसम्हार चढ़ीं
उत्तर पहार डरि सिव जी नरिन्द तें ।
भूपन भनत विन भूपन वसन, साधे
भूपन पियासन हैं नाहन को निन्दतें ।
वालक अयाने वाट वीचही विलाने कुम्हि-
लाने मुख कोमल कमल अरविन्द तें ।
दृगजल कज्जल कलित बढ़्यो कढ़्यो मानो,
दूजो सोत तरनि-तनूजा को कलिन्द तें ।

[२०]

दुवन सदन सब के बदन, सिव सिव आठों जाम ।
निज बचिबे कों जपत जनु, तुरकौ हर को नाम

[२१]

देखत ऊँचाई उतरत पाग सूधी राह
दौसाहू में चढ़े ते जो साहस निकेत है ।

सिवाजी हुकुम तेरो पाय पैदलन सल-
हेरी, परनालो ते वै जीते जनु खेत हैं॥
सावन-भादौं की भारी कुहू की अंध्यारी चढ़ी,
दुग्ग पर जात मावलीदल सचेत हैं।
भूपन भनत ताकी बात मैं विचारी तेरे,
परताप-रवि की उज्यारी गढ़ लेत हैं॥

[२२]

आयो आयो सुनत ही, सिव सरजा तुव नाँव।
वैरि नारि दृग जलन सों, बूड़ि जात अरि गाँव॥

[२३]

जीति लई वसुधा सिगरी घमसान घमण्ड कै बीरन हू की।
भूषन भौंसिला छीन लई जगती उमरावँ अमीरन हू की॥
साहि तनै सिवराज की धाकनि छूट गई धृति धीरन हू की।
मीरन के उर पीर बढ़ी यों जु भूलि गई सुधि पीरन हू की॥

[२४]

कामिनि कन्त सों, जामिनि चन्द सों, दामिनि पावस-मेघ-घटा सों।
कीरति दान सों, सूरति ज्ञान सों, प्रीति बड़ी सनमान महा सों॥
'भूपन' भूपन सों तरुनी, नलिनी नव पूपन देव-प्रभा सों।
जाहिर चारिहु ओर जहान लसै हिंदुवान खुमान सिवा सों॥

[८५]

चकत्ता चकता चतुरंगिनि चारिउ चापि लई दिसि चक्का।
भूप दरीन दुरे भनि भूषन एक अनेकन बारिधि नक्का॥
औरङ्गसाहि सों साहि को नन्द लरो सिवसाहि बजाय के डक्का।
सिंह की सिंह चपेट सहै, गजराज सहै गजराज को धक्का॥

[८६]

अटल रहे हैं दिग-अन्तन के भूप धरि,
रैयति को रूप निज देस पेस करि के।
राना रह्यो अटल बहाना करि चाकरी को,
बाना तजि भूषन भनत गुन भरि कै॥
हाड़ा, रायठौर, कछवाहे, गौर और रहे,
अटल चकत्ता को चमाऊ धरि डरि कै।
अटल सिवा जी रह्यो दिल्ली को निदरि धीर,
धरि, ऐंड़ धरि, तेग धरि गढ़ धरि कै॥

[८७]

कीरति सहित जो प्रताप सरजा मैं बर,
मारतण्ड मध्य तेज चाँदनी सो जानी मै।
सोहत उदारता औ सीलता खुमान मै सो,
कंचन मैं मृदुता सुगन्धता बखानी मै॥
भूषन कहत सब हिन्दुन को भाग फिरै,
चढ़े ते कुमति चकता हू की निसानी मै।

सोहत सुबेस दान कीरति सिवा में सोई,
निरखी अनूप रुचि मोतिन के पानी में॥

[२८]

दारुन दुगुन दुरजोधन ते अवरंग,
भूषन भनत जग राख्यो छत्र मढ़ि कै।
धरम धरम, बल भीम, पैज अरजुन,
नकुल अकिल, सहदेव तेज चढ़ि कै॥
साहि के सिवाजी गाजी कर्यो दिल्ली माहिं चण्ड,
पाण्डवन हू ते पुरुषारथ सुबढ़ि कै।
सूने लाख-भौन ते कढ़े वै पाँच राति मैं जु,
द्यौस लाख चौकी ते अकेलो आयो कढ़ि कै॥

[२९]

बड़ो डील लखि पील को, सबन तज्यो बन थान।
धनि सरजा तू जगत में, ताको हर्यो गुमान॥

[३०]

अरि तिय भिल्लिनि सों कहैं, बन बन जाय इकन्त।
सिव सरजा सों बैर नहिं, सुखी तिहारे कन्त॥

[illegible] बैर दक्खिन,
[illegible] दरबान के।

भूषण भनत रामनगर जवार तेरे,
बैर परवाह बहे रुधिर नदीन के ॥
सरजा समर्थ बीर, तेरे बैर बीजापुर,
बैरी बैयरनि कर चीन्ह न चुरीन के ।
तेरे बैर देखियत आगरे दिली के बीच,
सिंदुर के बिंदु मुख-इन्दु जवनीन के ॥

[३२]

पूरब के, उत्तर के, प्रबल पछाँह हू के,
सब पातसाहन के गढ़ कोट हरते ।
भूषण कहैं यों अवरंग सों वजीर जीति-
लीबे को पुरतगाल सागर उतरते ॥
सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज,
हजरत हम मरिबे को नाहिं डरते ।
चाकर हैं उजर कियो न जाय नेक पै,
कछू दिन उबरते तो घने काज करते ॥

[३३]

महाराज सिवराज चढ़त तुरंग पर,
ग्रीवा जाति नै करि-गनीम अतिबल की ।
भूषण चलत सरजा की सैन भूमि पर,
छाती दरकत खरी है अखिल खल की ॥

कियो दौरि घाव उमरावन अमीरन पै,
गई कटि नाक सिगरेई दिल्ली दल की।
सूरत जराइ कियो दाहु पातसाह उर,
स्याही जाय सब पातसाही मुख झलकी॥

[३४]

लै परनालो सिवा सरजा करनाटक लौं सब देस बिगूँचे।
बैरिन के भगे बालक बृन्द कहै कवि भूषण दूरि पहूँचे॥
नाँघत नाँघत घोर घने बन हारि परे यों कटे मनों कूँचे।
राजकुमार कहाँ सुकुमार कहाँ विकरार पहार वे ऊँचे॥

[३५]

कमन मैं बार बार वैसोई बलन्द होत,
वैसोई सरस रूप समर भरत है।
भूषन भनत महाराज सिवराजमनि,
सघन सदाई जस फूलन धरत है॥
बरछी कृपान गोली तीर केते मान जोरा—
वर गोला बान तिनहू को निदरत है।
तेगे करवाल भयो जगत को ढाल अब,
सोई हाल म्लेच्छन के काल को करत है॥

[३६]

आदि बड़ी रचना है बिरंचि की जामें रह्यौ रचि जीव जड़ो है
ता रचना महँ जीव बड़ो अति, काहे ते ? ता उर ज्ञान गड़ो है॥

गैरन में सरलोक कहै कवि भूषन आपन पैज गड़ो है।
है सरलोक में राज बड़ो सब राजन में सिवराज बड़ो है॥

[३७]

स्यार के भूप भूम चढ़न जहाँ ही तहाँ,
गढ़न कँगूरे उद्ध यानि ही कलाप हैं।
जहाँ कलावन्त आलापहीं मधुर स्वर,
तहाँ भूत प्रेत अब करत विलाप हैं।
भूषन सिवाजी सरजा के बैर बैरिन के,
डेरन में परे मानों काहू के सराप हैं।
बाजत हे जिन महलन में मृदंग तहाँ,
गाजत मतङ्ग सिंघ बाघ दीह दाप हैं॥

[३८]

साहि तनै सरजा समरत्थ करी करनी धरनी पर नीकी।
भूलिगे भोज से विक्रम से औ भई बलि बेनु की कीरति फीकी॥
भूषन भिच्छुक भूप भये भलि भीख लै केवल भौंसिला ही की।
नैसुक रीझि धनेस करै लखि ऐसिय रीति सदा सिव जी की॥

[३९]

मानसर वासी हंस बंस न समान होत,
चन्दन सो घस्यो घनसार हू घरीक है।
नारद की सारद की हाँसी में कहाँ की आभ,
सरद की सुरसरी को न पुण्डरीक है॥

[४७]

उमड़ि कुडाल मैं खवास खान आए, भनि
भूपन त्यों धाए सिवराज पूरे मन के।
सुनि मरदाने वाजे हय हिहनाने घोर,
मूछैं तरराने मुख वीर धीर जन के॥
एकै कहैं मार मार, सम्हरि समर एकै,
म्लेच्छ गिरैं मार बीच वेसम्हार तन के।
कुण्डन के ऊपर कड़ाके उठैं ठौर-ठौर,
जीरन के ऊपर खड़ाके खड़गन के॥

[४८]

अजौं भूतनाथ मुण्ड-माल लेत हरपत,
भूतन अहार लेत अजहूँ उछाह है।
भूपन भनत अजौं काटे करवालन के,
कारे कुञ्जरन परी कठिन कराह है।
सिंह सिवराज सलहेरि के समीप ऐसो,
कीन्हों कतलाम दिलीदल को सिपाह है।
नदी रनमण्डल रुहेलन रुधिर अजौं,
अजौं रवि-मण्डल रुहेलन की राह है॥

[४९]

अंभासी दिन की भई संभासी सकल दिसि,
गगन लगन रही गरद छवाय है।

चील्ह, गीध, बायस समूह घोर रोर करैं,
ठौर ठौर चारों ओर तम मँडराय है ॥
'भूषन' अँदेस देस-देस के नरेसगन,
आपुस में कहत यों गरब गँवाय है।
बड़ो बड़वा को, जितवार चहुँघा को दल,
सरजा सिवा को, जानियत इत आय है ॥

[५०]

बानर बरार बाघ बैहर बिलार बिग,
बगरे बराह जानवरन के जोम हैं ।
भूषन भनत भारे भालुक भयानक हैं,
भीतर भवन भरे लीलगऊ लोम हैं।
ऐंडायल, गजगन, गैंडा गररात गनि,
गेहन में गोहन गरूर गहे गोम हैं।
सिवाजी की धाक मिले खलकुल खाक, बसे
खलन के खेरनि खबीसन के खोम हैं ॥

[५१]

साजि चतुरंग बीर रंग में तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
भूषन भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी-नद मद गैबरन के रलत है

ऐल फैल खैल भैल खलक में गैल-गैल,
गजन की ठैल पैल सैल उसलत है ।
तारा सो तरनि धूरिधारा में लगत, जिमि
थारा पर पारा पारावार यों हलत है ॥

[५२]

बाजि गजराज सिवराज सैन साजत ही,
दिल्ली दिलगीर दसा दीरघ दुखन की ।
तनियाँ न तिलक सुथनियाँ पगनियाँ न,
घामें घुमरातीं छोड़ि सेजियाँ सुखन की ॥
भूषन भनत पति बाँह बहियाँ न तेऊ,
छहियाँ छबीली ताकि रहियाँ रुखन की ।
बालियाँ बिथुर जिमि आलियाँ नलिन पर,
लालियाँ मलिन मुगलानियाँ मुखन की ॥

[५३]

ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी,
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं ।
कन्द मूल भोग करैं, कन्द मूल भोग करैं,
तीन बेर खातीं ते वै बीन बेर खाती हैं ॥
भूषन सिथिल अंग, भूषन सिथिल अंग,
बिजन डुलातीं ते वै बिजन डुलाती हैं ।

भूषन भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं ॥

[५४]

उतरि पलँग ते न दियो है धरा पै पग,
सोई निसि-दिन सगवग चली जाती हैं।
अति अकुलानीं मुरझातीं न छिपातीं गात,
बात न सोहानी बोले अति अनखाती हैं॥
भूषन भनत वली साहि के सपूत सिवा,
तेरी धाक सुने अरिनारी दिलखाती हैं।
जोन्ह में न जानीं वेऽी धूपें चली जातीं पुनि
कोऊ करैं घाती कोऊ रोतीं पीटिछाती हैं।

[५५]

सबन के ऊपर ही ठाड़ो रहिवे के जोग,
ताहि खरो कियो पंज-हारिन के नियरे।
जानि गैर मिसिल गुसैला गुसा धारि उर,
कीन्हों न सलाम, न वचन बोले सियरे॥
भूषन भनत महावीर बलकन लागो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।

तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि, भये,
स्याह मुख नौरंग, सिपाह-मुख पियरे ॥

[५६]

राना भो चमेली और बेला सब राजा भये,
ठौर ठौर लेत रस नित्य यह काज है।
सिगरे अमीर भये कुन्द मकरन्द भरे,
भृंग सो भ्रमत लखि फूल के समाज है॥
भूषन भनत शिवराज देश देशन की,
राखि है बटोरि एक दच्छिन में लाज है।
तजत मिलिन्द जैसे, तैसे तजि दूर भाज्यो,
अलि अवरङ्गजेब, चम्पा सिवराज है॥

[५७]

उतै पातसाह जू के गजन के ठट्ट छूटे,
उमड़ि-घुमड़ि मतवारे घन कारे हैं।
इतै सिवराज जू के छूटे सिंहराज औ,
विदारे कुम्भ करिन के चिकरत भारे हैं॥
फौजें सेख, सैयद, मुगल और पठानन की,
मिलि इखलास क्यों हू मीर न सँभारे हैं।
हद हिन्दुवान की विहद तरवारि राखी,
कैयो बार दिल्ली के गुमान झारि डारे हैं॥

[५८]

छूटत कमान और गोली तीर बानन के,
होत कठिनाई मुरचानहू की ओट में ।
ताहि समै सिवराज हांक मारि हल्ला कियो,
दावा बाँधि परा हल्ला बीरवर जोट में ॥
भूषन भनत तेरी हिम्मति कहां लौं कहौं,
किम्मति यहां लगि है जाकी भट झोट में ।
ताव दै दै मूँछन कंगूरन पै पांव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदि परे कोट में ॥

[५९]

कोप करि चढ्यो महाराज सिवराज वीर,
धौंसा की धुकार ते पहार दरकत हैं ।
गिरे कुंभि मतवारे श्रोनित फुहारे छूटें,
कड़ाकत छिति नाल लाखों करकत हैं ॥
मारे रन जोम के जवान खुरासान के ते,
काटि काटि दाटि दावें छाती दरकत हैं ।
रन-भूमि लेटे वे चपेटे पठनेटे परे,
रुधिर लपेटे मुगलेटे फरकत हैं ॥

[६०]

दिल्ली-दल दलै सलहेरि के समर सिवा,
भूषन तमासे आय देव दमकत हैं ।

किलकति कालिका कलेजे की कलल करि,
करि कै अलल भूत भैरों तमकत हैं ॥
कहुँ रुंड-मुंड, कहुँ कुंड भरे स्रोनित के,
कहुँ बखतर करि झुंड झमकत हैं ।
खुले खग्ग कंध धरि ताल गति बंध परी,
धाय धाय धरनि कबंध धमकत हैं ॥

[६१]

साहि के सपूत रन सिंह सिवराज वीर,
बाढ़ी समसेर सिर शत्रुन पै कढ़ि कै ।
काटे ये कटक कटकिन के विकट भूपैं,
मसों न जात कह्यो शेष मन पढ़ि कै ॥
रावार ताहि को न पावत है पार कोऊ,
सोनित समुद्र यह भाँति रह्यो बढ़ि कै ।
ादिया की पुच्छ गहि पैरि कै कपाली बचे,
ाली बची माँस के पहार पर चढ़ि कै ॥

[६२]

ग पर दुग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी,
ग पर उग्ग नाचे रुंड मुंड फरके ।
पन भनत बाजे जीत के नगारे भारे,
रे करनाटी भूप सिंहल लौं सरके ।
रे मुनि सुभट पनारेवारे उद्भट,

केते बीर मारि के बिदारे किरवानन ते,
केते गिद्ध खाय, केते अंबिका अचकि गे।
भूषन भनत रुंड मुण्डन की माल करि,
चार पाँव नाड़िया के भार ते भचकि गे।
टूटिगे पहार बिकराल भुवमंडल के,
सेस के सहस फन, कच्छप कचकि गे॥

[६८]

गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर,
दावा नाग-जूह पर सिंह सिरताज को।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को॥
'भूषन' अखंड नव खंड महि-मंडल में,
तम पर दावा रवि-किरन-समाज को।
पूरब पछाँह देस दच्छिन ते उत्तर लौं,
जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को॥

[६[illegible]]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

मीड़ि राखे मुगल, मरोरि राखे पातसाह,
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में॥

[७०]

भुज भुजगेस की वै संगिनी भुजंगिनी सी,
खेदि खेदि खातीं दीह दारुन दलन के।
बखतर पाखरनि बीच धँसि जाती मीन,
पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के॥
रैया राय चम्पति को छत्रसाल महाराज,
'भूषन' सकत को बखान यों बलन के।
पच्छी परछीने ऐसे परे परछीने बीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के॥

[७१]

रैया राय चम्पति को चढ़ो छत्रसाल सिंह,
भूषन भनत समसेर जोम जमकैं।
भादों की घटा सी उठीं गरदैं गगन घेरैं,
सेलैं समसेरैं फिरैं दामिनी सी दमकैं।
खान उमरावन के आन राजा-रावन के,
सुनि सुनि उर लागैं घन कैसी घमकैं।

बैहर बगारन की, अरि के अगारन की,
नाँघती पगारन नगारन की धमकैं ॥

[७२]

हैवर हरट्ट साजि गैंवर गरट्ट सम,
पैदर के ठट्ट फौज जुरी तुरकाने की।
भूषन भनत राय चम्पति के छत्रसाल,
रोप्यो रन ख्याल ह्वै के ढाल हिन्दुवाने की।
कैयक हजार एक बार बैरी मारि डारे,
रंजक दगनि मानो अगिनि रिसाने की।
सैद अफगान सेन सगर सुतन लागी,
कपिल सराप लौं तराप तोपखाने की ॥

[७३]

चाक चक चमू के अचाकचक चहूँ ओर,
चाकसी फिरनि धाक चम्पति के लाल की।
भूषन भनत पातसाही मारि जेर कीन्हीं,
काहू उमराव ना करेरी करवाल की ॥
सुनि सुनि रीति बिरदैत के बड़प्पन की,
थप्पन उथप्पन की बानि छत्रसाल की।
जंग जीति लेवा ते वै ह्वै के दाम देवा भूप,
सेवा लागे करन महेवा महिपाल की ॥

[७४]

देस दहवट्टि आयो आगरे दिली के मेंड़े,
बरगी बहरि मानो दल जिमि देवा को।
भूषन भनत छत्रसाल छितिपाल मनि, ताके,
ते कियो विहाल जंग जीति लेवा को ॥
खंड खंड सोर यों अखंड महि मण्डल में,
मंडो, ते बुँदेलखंड मण्डल महेवा को।
दच्छिन के नाह को कटक रोक्यो महाबाहु,
ज्यों सहस्रबाहु ने प्रवाह रोक्यो रेवा को॥

[७५]

राजत अखण्ड तेज छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयन्द दिग्गजन हिय साल को।
जाहिके प्रताप सों मलीन आफ़ताब होत,
ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को॥
साज सजि गजतुरी, पैदर कतार दीन्हें,
भूषन भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को
और राजा राव एक मन में न ल्याऊँ अब,
साहू को सराहौं के सराहौं छत्रसाल को॥

[७६]

किबले के ठौर बाप बादसाह साहजहाँ
ताको कैद कियो मानों मक्के आगि लाई है

[illegible]
[illegible] ॥
[illegible]
[illegible] ।
भूषन [illegible] नवखंडकोष,
[illegible] ॥

[७७]

टूटि गयो [illegible] के [illegible] सिपाहिन को,
टूटि गो धौंसा सबै धौरना के बाने को ।
भूषन भनत टूटि धरम धरा में गयो,
टूटि गो सिंगार सबै राजा राव राने को ॥
टूटि गो सुशील सब टूटि गो यशोलो डील,
फैलो मध्य देश में समूह तुरकाने को ।
फूटे भाल हिन्दुन के, जूझे यशवंतराय,
अरराय टूटो कुल-खंभ हिन्दुवाने को ॥

[७८]

आपस की फूट ही ते सारे हिन्दुवान टूटे,
टूट्यो कुल रावन अनीति अति करते ।
पैठिगो पताल बलि बज्रधर ईरषाते,
टूट्यो हिरनाच्छ अभिमान चित धरते ॥

टूट्यो सिसुपाल बासुदेव जू सों बैर करि,
टूट्यो है महिष दैत्य अधम बिचारते ।
राम कर छुवन ते टूट्यो ज्यों महेसचाप,
टूटी पातसाही सिवराज संग लरते ॥

गुरु गोविन्दसिंह

सिक्खों के परम प्रतापी दशम गुरु श्री गोविन्दसिंह का जन्म सन् १६६६ की ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी को पटना नगर में हुआ था। उनके जन्म-स्थान पर आज भी एक विशाल गुरुद्वारा कायम है। गुरु गोविन्द के पिता का नाम गुरु तेगबहादुर और माता का नाम गुजरी जी था। लाहौर के श्री हरियश खत्री की कन्या से गुरु गोविन्द का विवाह हुआ। उस समय उनकी आयु सिर्फ़ सात वर्ष की थी।

गुरु गोविन्दसिंह की गणना भारतवर्ष के सर्वश्रेष्ठ वीरों में की जाती है। उन्होंने सच्चे अर्थों में पंजाब के निरीह और असंगठित हिन्दुओं तथा सिक्खों को चिड़ियों से बाज़ बना दिया। प्रबल-प्रतापी तथा महान वीर होने के अतिरिक्त गुरु गोविन्दसिंह एक बड़े राजनीतिज्ञ तथा विद्वान भी थे। अपने दरबार में वह विद्वानों का बड़ा आदर करते थे। इन सब के अतिरिक्त वह स्वयं भी एक श्रेष्ठ कवि थे गुरु ग्रन्थ साहब के कुछ भाग की र-

गुरु गोविन्दसिंह जी ने भी की। इसके अतिरिक्त जाप, सुनीति प्रकाश, ज्ञानबोध, प्रेम, सुमार्ग, बुद्धिसागर, विचित्र-नाटक आदि अनेक ग्रन्थ भी आपने लिखे।

गुरु गोविन्दसिंह सिक्खों के अन्तिम गुरु थे। उन्होंने घोषणा कर दी कि इनके बाद भविष्य में केवल ग्रन्थसाहब को ही गुरु माना जाय। सन् १७०७ में सिर्फ ४१ बरस की आयु में उन का देहान्त हो गया। उस वर्ष भादों बदी चतुर्थी की रात को अताउल्ला और गूलखाँ नाम के दो सगे भाई पठानों ने गोदावरी तट पर बसे हुए अविचल नामक नगर में, उनके पेट में कटार ...क दी। यह इस कारण कि उनका पिता किसी युद्ध में गुरु गोविंद हाथों मारा गया था। चोट खाकर भी एक ही वार में गुरु ने गूलखाँ के दो टुकड़े कर दिए।

दशम गुरु के काव्य में वीर-रस का विशेष परिपाक हुआ है। वह स्वयं महावीर थे, इससे उनका वीर-काव्य विशेष महत्व-पूर्ण है। यहाँ उनके कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं--

शुम्भ निशुम्भ-प्रताप

दोहा

सुर हारे जीते असुर, लीने सकल समाज।
दीनो इन्द्र भगाइ कै, महा प्रबल दल साज ॥१॥

सवैया

छीन भंडार लियो है कुबेर ते,
शेषहूं ते मणि माल छुड़ाई।
जीति सुरेश दिनेश निशेश,
गणेश जलेश दियो है भगाई॥
लोक कियो तिन तीनहु आपने,
दैत्य पठै तह दे ठकुराई।
जाइ बसे सुरधाम तेऊ तिन,
संभु निशंभ की फेरि दुहाई॥२॥

लवीय कुशीय युद्ध

भुजगप्रयात छन्द

रचा बैर बाद विधाते अपार।
जिसै साध साक्यो न कोऊ सुधार।
बली कामराय महा लोभ मोहं
गयो कौन बीर न ज्यातें अलोह ॥१॥

तहां वीर बंके बकै आप मद्धं ।
उठे शस्त्र लै लै मचा युद्ध शुद्धं ॥
कहूं खप्परी खोल खंडे अपारं ।
नचै वीर वैताल डौरू डकारं ॥४॥
कहूं ईश सीसं पुरो रुंड मालं ।
कहूं डाक डौरू कहूँ किवतालं ॥
चवी चावडियं किलंकार कंकं ।
गुथी लुत्थ जुत्थं वहे वीर वंकं ॥५॥
परी कुट कुटं रुले तुच्छ मुच्छं ।
रहे हाथ डारे उभै उर्द्ध मुच्छं ॥
कहूँ खोपरी खोल खिगं खतंगं ।
कहूँ त्रियं खग खेतं निखंगं ॥६॥
चवी चांवडी डाकिनी डाक मारैं।
कहूँ भैरवी भूत भैरों बकारैं ॥
कहूँ बीर बेताल बंके बिकारं ।
कहूँ भूत प्रेतं हसे मासहारं ॥७॥

रसावल छन्द

महावीर गज्जे । सुने मेघ लज्जे ।
झंडा गड गाढे । मंडे रोस बाढे ॥८॥
कृपाण। कटार । भिरं रोस धारं ।
महावीर वंकं । भिरं भूम हंकं ॥९॥

मचे सूर सस्त्रं । उठी झार अस्त्रं ॥
कृपानं कटारं । परी लोह मारं ॥१०॥

भुजंगप्रयात छन्द

हलब्बी जुनब्बी सरोही दुधारी ।
बही कोप काती कृपानं कटारी ॥
कहूँ सहथियं कहूँ शुद्ध सेलं ।
कहूँ सेल सांगं भई रेल पेलं ॥ ११ ॥

नराज छन्द

सरोप सूर साजिअं । बिसार शंक बाजिअं ॥
निशंक शस्त्र मारहीं । उतार अंग डारहीं ॥ १२ ॥
कछू न कान राखहीं । सु मारि मारि भाखहीं ॥
सु हाँक हाक रेलयं । अनंत शस्त्र झेलयं ॥ १३ ॥
हजार हूर अंबरं । बिरुद्ध कै स्वयंबरं ॥
करूर भांत डोल हीं । सुमार मार बोल हीं ॥ १४ ॥
कहूं कि अंग कटीअं कहूं सरोह पट्टीअं ।
कहूं सु मास मुक्कीअं गिरे सु तत्र सुक्कीअं ॥ १५ ॥
डमक्क ढोल ढालयं हहाल हाल चालयं ।
झटाक झट्ट बाहीअं सुबीर सैन गाहीअं ॥ १६ ॥
नवं निशाण बाजिअं सुबीर धीर गाजिअं ।
कृपाण बाण बाहहीं अजान अंग लाहहीं ॥ १७ ॥

विरुद्ध क्रुद्ध राजियं । न चार पैर भाजियं ॥
संभार शस्त्र गाजहीं । सुनाद मेघ लाजहीं ॥ १८ ॥
हलंक हाक मारहीं । सरक्क शस्त्र झारहीं ॥
भिरे बिसार सोकियं । सिधार देव लोकियं ॥ १९ ॥
रिसे विरुद्ध वीरयं । सुमार झारि तीरयं ॥
शबद शंख बजियं । सुबीर धीर सज्जियं ॥२० ॥

रसावल छन्द

तुरी शंख बाजे । महावीर साजे ॥
नचे तुंद ताजी । मचे सूर गाजी ॥ २१ ॥
झिमी तेज तेगं । मनो बिज्ज बेगं ॥
उठे नद नादं । धुनं निर्विपादं ॥ २२ ॥
तुटे खग्ग खोलं । मुखं मार बोलं ॥
धका धीक धक्कं । गिरे हक्क वक्कं ॥ २३ ॥
दलं दीह गाहं । अधो अंग लाहं ॥
प्रयोघं प्रहारं । बकं मार मारं ॥ २४ ॥
नदी रक्त पूरं । फिरि गैण हूरं ॥
गजै गैण काली । हसी खप्पराली ॥ २५ ॥
महा सूर सोहं । मंडे लोह क्रोहं ॥
महा गर्ब गर्जियं । धुणं मेघ लज्जियं ॥ २६ ॥
छके नाक छक्कं । मुखं मार बक्कं ॥
मुखं मुच्छ बंकं । भिरे छाड शंकं ॥ २७ ॥

हकं हाक बाजी। घिरी सैना साजी॥
चिरे चार ढूके। मुखं मार कूके॥ २८॥
तुटे सूर सांगं। मनो सिंधु गंगं॥
ढहे ढाल ढक्कं। कृपाणं कड़क्कं॥ २९॥
हकं हाक बाजी। नचे तुंद ताजी॥
रसं रुद्र पागे। भिरे रोस जागे॥ ३०॥
गिरे शुद्ध सेलं। भई रेल पेलं॥
पलं हार नच्चे। रणं बीर मच्चे॥ ३१॥
हसे मास हारी। नचे भूत भारी॥
महां ढीठ ढूके। मुखं मार कूके॥ ३२॥
गजै गैणादेवी। महा अंश भेवी॥
भले भूत नाचं। रसं रुद्र राचं॥ ३३॥
भिरै बैर रुज्झै। महा जोध जुज्झै॥
झंडा गड्ड गाडे। बजे बैर बाढै॥ ३४॥
गलंगाह बांधे। धनुबाण साधे॥
वहे आप मद्दं। गिरे अद्ध अद्दं॥ ३५॥
गजं बाज जूझे। बली बैर रुझे॥
निर्भय शस्त्र बाहै। उभै जीत चाहै॥ ३६॥
गजे आन गाजी। नचे तुंद ताजी॥
हकं हाक बज्जी। फिरै सैन भज्जी॥ ३७॥

मदं मद्द मातं । रसं रुद्र राते ॥
गजंजूह साजे । भिरे गोस वाजे ॥ ३८ ॥
झमी तेज तेगं । घगं बिज्जु वेगं ॥
बहे वार वैरी । जलं ज्यो गंगेरी ॥ ३९ ॥
अपो आप बाहं । उभे जीत चाहं ॥
रसं रुद्र राते । महा मत्त माते ॥ ४० ॥

भुजंग छन्द

मचे बीर बीरं अभूतं भयाणं ।
बजीं भेर भुंकार धुक्के निशाणं ॥
नवं नद्द नीशाण गज्जे गहीरं ।
फिरे रुंड मुंडं तनं तच्छ तीरं ॥ ४१ ॥
बहे खग्ग खेतं ख्यालं खतंगं ।
रुले तच्छ मुच्छं महा जोध जंगं ॥
बंधे बीर बाना बड़े ऐंठि वारे ।
घुमै लोह घुटं मनो मत्तवारे ॥ ४२ ॥
उठी कूह जूहं समर सार वज्जियं ।
किधों अंत के काल को मेघ गज्जियं
भई नीर भीरं कमाणं कड़क्कियं ।
बजे लोह क्रोहं महा जंग मच्चियं ॥४३ ॥
बिरज्जे महा जंग योद्धा जुआणं ।
खुले खग्ग खत्री अभूतं भयाणं ॥

बली जुज्झ रुज्झै रुलं रुद्र रत्तं ।
मिले हत्थ बत्थं महा तेज तत्तं ॥ ४४ ॥
भमी तेज तेगं सु रोसं प्रहारं ।
खुले देह मुंडं उठी भस्म झारं ॥
धमकंत धीरं भभकंत घायं ।
मनो युद्ध इंद्रं जुट्यो वृत्तरायं ॥ ४५ ॥
महा युद्ध मच्चियं महा सूर गाजे ।
अपो आप में शस्त्र सो शस्त्र वाजे ॥
उठे झार सांगं मचे लोह कोहं ।
मनो खेल वासंत माहंत सोहं ॥ ४६ ॥

रसावल छन्द

जिते बीर रुज्झं । तिते अन्त जुज्झं ॥
जिते खेत भाजे । तिते अन्त लाजे ॥ ४७ ॥
तुटे देह वर्मं । छुटी हाथ चर्मं ॥
कहूं खेत खोलं । गिरे सूर टोलं ॥ ४८ ॥
कहूं मुच्छ मुच्छं । कहूं शस्त्र मच्छं ॥
कहूं खोल खग्गं । कहूं परम पग्गं ॥ ४९ ॥
गहे मुच्छ बंकी । मंडे आन हंकी ॥
ढका ढुक ढालं । उठे हाल चालं ॥ ५० ॥

भुजंग छन्द

खुलें खग्ग खूनी महावीर खेतं ।
नचे वीर बैतालयं भूत प्रेतं ॥
वजे डंक डउरू उठे नाद शंखं ।
मनो मल्ल जुटे मल्ल हत्थ वक्खं ॥ ५१ ॥

छप्पय छन्द

जिन सूरन संग्राम सवल सामुहि ह्वै मंडयो ।
तिन सुभटन ते एक कालको जियत न छडयो ॥
सब क्षत्रिय खग्ग खंड खेत ते भूमंडप आहुट्टे ।
सार धार धर धूम मुक्त बंधन ते छुट्टे ॥
ह्वै टूक टूक जुज्झै सवैं पाव न पाछै डारियं ।
जयकार अपार हुआ वासव लोक सिधारियं ॥ ५२ ॥

चौपाई

इह विध मचा घोर संग्रामा ।
सिधए सूर सूर के धामा ॥
कहां लगे वह कथों लराई ।
आपन प्रभा न वरनी जाई ॥

भुजंगप्रयात छन्द

लवी सर्व जीते कुशी सर्व हारे ।
वचे जे वली प्रान लै कै सिधारे ॥

कंसवध

सवैय्या

हरि कूद गये रंगभूमहि ते
नृप थो सु जहाँ तहँ ही पगु धारयो।
कंस लई कर ढाल संभार कै
कोप भरयो असि मैन निकारयो॥
दौर दई तिहु के तन पै
हरि फांध गए अन दाव संभारयो।
केसन ते गहि कै रिप कौं
धरनी पर कै बल ताहि पछारयो॥६१॥

सवैय्या

गहि केसन ते पटक्यो धर सों
गहि गोडन ते तब घीस दयो।
नृप मार हुलास बढ्यो जिय मैं
अति ही पुर भीतर सोर पयो॥
कवि स्याम प्रताप लख्यो हरि को
जिन साधन राख कै सत्र छयो।
कट बंधन तात दिए मन कै
तब ही जग मे जस वाहि लयो॥६२॥

कान्ह कह्यो जड़ चाहत मृत
किधो सब लोगनि सूरज साखी ॥
चक्र सुदर्शन लै कर भीतर
क्रुद्ध सभा सब ही सो भाखी ।
धावत भयो कपि स्याम कहै सु
भयो तिह के बध को अभिलाखी ॥ ७२ ॥
धावत भयो ब्रजनायक जू
इतते उतते सोऊ सामुहे आयो ।
रोस बढाइ घनो चित्त मैं तजि कै
तिह शत्रु को चक्र चलायो ॥
जाइ लगयो तिह कंठ बिखै
कट देत भयो छुट भूपर आयो ।
यह उपमा उपजी जिय मैं
दिव ते रवि को मनो मार गिरायो ॥ ७३ ॥
काट कै सीस दियो शिशुपाल को
कोप भरयो दोऊ नैन नचावै ।
कौन बली इह बीच सभा हू कै
है हम सों जोऊ युद्ध मचावै ।
पारथ भीम ते आदिक बीर
रहे चुप हुइ मनि ही डर आवै ।

देव अदेव सबै याही के
देवन ते गुन जानि बखानयो ॥
बीरन वीर बडोई लखयो हरि
भूपन भूपन ते खुनसानयो ।
और जिते अरि ठाडे हुते तिन
स्याम सही करि काल पछानयो ॥ ७७ ॥
श्री व्रजनाथ ठांढे तहां कर
बीच सुदर्शन चक्र लिए ।
वहु रोस ठने अति क्रोध भरयो अरि
आन को आनत है न हिए ॥
तिह ठौर सभाहूं में गाजत भयो
सम कालहि को मनो भेख किए ।
जिह देखत प्रान तजै अरिवा
वहु संत निहार कै रूप जिए ॥ ७८ ॥

जोधराज

— —

कवि जोधराज के जन्म और अवसान के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इन्होंने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना निम्बारण के राजा चन्द्रभान की आज्ञा से सन् १७२८ में की।

महाराज पृथ्वीराज के वंश में १८ वीं सदी में चन्द्रभान नाम का एक वीर पुरुष उत्पन्न हुआ। वह केवल निम्बारण गांव का जागीरदार था, परन्तु उसकी वीरता, उदारता, पराक्रम और बुद्धिमत्ता के कारण आसपास के सब लोग उसे महाराजा कह कर बुलाया करते थे। उनका आदर भी महाराजाओं के समान होता था। इसी चन्द्रभान के दरबार में जोधराज 'राजकवि' था। जोधराज का जन्म आदि गौड़ ब्राह्मण कुल में अत्रि गोत्र में हुआ था। उसके पिता का नाम बालकृष्ण था। जोधराज को लोग हिहवरिय राव कहा करते थे।

चन्द्रभान ने एक बार हम्मीर से अनुरोध किया कि वह उन्हें महाराज हम्मीर की वंशावली तथा उनके अलाउद्दीन से बैर की कथा सुनाएँ। तब जोधराज ने 'हम्मीर रासो' ग्रन्थ की रचना की। इस हम्मीररासो में से कुछ अंश यहाँ दिया जाता है—

त्रोटक छन्द

चढ़िये करि कोप हमीर मनं ।
करि दिट्ठ सगट्ठ सम्हारि पनं ॥
बहु तोप सुसिद्ध सँवारि धरी ।
बुरजैं बुरजैं धर धूम परी ॥१॥
बहु कंगुर कंगुर वीर अरे ।
सब द्वारन द्वारन धीर परे ॥
सब ठौरन ठौरन राखि भरं ।
चढ़िये गजपै चहुवान नरं ॥२॥
बहु वीर हमीर सु संग चढ़े ।
गजराजन उप्पर द्वंद बढ़े ॥
करि डम्बर अम्बर सीस लगे ।
मनु सोवत धीर सवीर जगे ॥३॥
बहु चंचल बाजि करन्त खुरी ।
तिन उप्पर पप्पर सौंज परी ॥
नर ज्ञान जवान लसै दल मैं ।
रन मैं उनमत्त लसैं बल मैं ॥४॥
बहु दुंदुभि बज्जत घोरघनं ।
निकसे नव गाव करन्त रनं ॥

रणधीर सु कोपि कैं साँगि लई ।

अजमन्त कैं फूटि कैं पार गई ॥

परियो अजमन्त सु खेत जबै ।

महमन्द अली फिरि आय तबै ॥ ११ ॥

रणधीर सु कोपि कैं बैन कहै ।

कर देखि अबै मति भूलि रहै ॥

किरवान सु धीर के अंग दई ।

कटिटोप कछू सिर मांझ भई ॥ १२ ॥

तब कोप कियो रणधीर मनं ।

किरवान दई महमन्द तनं ॥

परियो महमंद असंद बली ।

तब नाहि कि सैन नदै जु हली ॥ १३ ॥

लुथि लुथ्थि परैं बहु बीर भरैं ।

बहु खंजर पंजर पार करैं ॥

धर सीस परैं कटि बीस तनं ।

कर पाँव कटै बहु बीन पनं ॥ १४ ॥

यहि भाँति भिरे पठान बली ।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

कहूँ जन्म दंडं करैं बाहु जोरं ।
कहैं अंत अंतं कहूं सीस तोरं ॥
कहूं हथ्थ मथ्थं परे बीर बंके ।
उठे रुंड मुंडं करैं जोर हंके ॥ २२ ॥
इतैं मीर जामील धायो हंकारं ।
इतैं खान धायो भिरयौ इक बारं ॥
इतैं मीर तीरं चलायो हंकारी ।
लग्यो बाजि कै सो भयो बारि पारि ॥ २३ ॥
परयो खांन को बाजि फुट्टो सु अंगं ।
चढ़े और बाजी करयो फेरी जंगं ॥
दई खांन जम्मील कै अंग दच्छी ।
परयौ घुम्मि मीरं सुनो आय मुच्छी ॥ २४ ॥
दोउ सैन देखैं भिरे बीर दोउ ।
भये लख्ख दख्खं कुमारं सु सोउ ॥
परयो और भागी कुमार न जान्यौ ।
[illegible] सुमान्यौ । [illegible] ॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

वियोगी हरि

वियोगी हरि जी ने बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं। आजकल वह महात्मा गान्धी के 'हिन्दी हरिजन' पत्र का सम्पादन कर रहे हैं। हिन्दी संसार के बीसवीं सदी के श्रेष्ठ कवियों में उनकी गणना की जाती है, यद्यपि उनकी शैली में प्राचीनता है। वीर सतसई' पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से उन्हें मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी दिया जा चुका है। वीर-रस का बहुत अच्छा परिपाक इस ग्रन्थ में हुआ है। 'वीर सतसई' में से कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

युद्ध-रत्त-दृग-रक्त कौ कहा रक्त सँग लाग।
लागतु यातें दाग, वह मेटतु हियकौ दाग ॥९॥
सहज सूर-नैननि लख्यौ सील-ओज-संचारु।
एकैरस निवसतु तहाँ पानिप औरु अंगारु ॥१०॥
जदपि रुद्रबल-तेज कौ कियौ न प्रगटि प्रकासु।
दिपतु तऊ अँखियानि है अंतर-ओज-उजासु ॥११॥

खड्ग

पर्‌यौ समुझि नहिं आजु-लौं या अचरज कौ हेतु।
फर्‌यौ असित असि-लता तें सुजसु-चारु-फलु सेतु ॥१२॥
जदपि इतौ पानिप चख्यौ, अचरजु तदपि महान।
नितप्रति प्यासीही रही, लही न तृप्ति कृपान ॥१३॥
बसति आपु लघु म्यान में वह कृपान लघुगात।
त्रिभुवन में न समातु पै सुजसु तासु अवदात ॥१४॥
प्रलय-कारिनी तुव, छुता! लपलपाति तरवार।
खात-खात खल-सीसु जो लई न अजहुँ डकार ॥१५॥
बसै जहाँ करवाल! तूँ, रमैं तहाँ किमि बाल?
एकसंग निवसनि कहूं ज्वाल मालती-माल ॥१६॥
धारि मौन असि-बालिके! अब तूँ भई सयानि!
अरी हठीली! किन तजी वह इठलाहट-बानि? ॥१७॥

तड़ित ओप तरवार में समता किमि दरसाय ।
ज्योंहीं वह चमकनि दमकि, त्योंही वह दुरि जाय ॥१८॥

लहरति, चमकति चाव सों तुव तरवार अनूप ।
धाय डसति, चौंधति चखनि, नागिनि दामिनि रूप ॥१९॥

वह नाँगी तरवारहू बनी लजीली नारि ।
नहिं खोल्यौ मुख म्यान तें, हौं मनु परदावारि ॥२०॥

करति मरम-तर वार जो तोइ प्रखर तरवार ।
जानति कबहुँ कृपा न करि, कहिय कृपान करार ॥२१॥

सुभट लाल ! असि-दूतिका ठाढ़ी सुबुधि-सयानि ।
मानिनि वसुधा-बाल कौ यही गहावति पानि ॥२२॥

रमति अंत नहिं कंत तजि, कुल-कामिनि तरवारि ।
कहूं सुहागिन होति है सती सुहागिन नारि ॥२३॥

रण-नायक-भामिनि तुहीं, कुल-कामिनि करवाल ।
अंतहुँ प्रीतम-कंठ तूँ भई लपटि रति-माल ॥२४॥

सोभित नील असीन पै रुधिर-बिन्दु-कृत जाल ।
लसति तमाल-लतान पै मनहुँ बधूटी-माल ॥२५॥

धनुष-बाण

देखनहीं वह कुटिल पै कुटिल सरल है जान ।
त्यों अरि अधिर पिरात, ज्यों विषम बान लहरान ॥२६॥

मारुति-प्रतिज्ञा

उठि ठाढ़ो ह्वैहै जबै सघनु सुमित्रा-नन्द।
तबहि पसीना पोंछिहौं पथ-श्रम कौ, रघुचन्द ! ॥४४॥
जौलगि मूरि न लाउँ मैं मारुति तौलगि, तात !
करि सुधि मो सिसु-केलि की मुख न खोलियो प्रात ॥४५॥

भीष्म-प्रतिज्ञा

रहिहौं अस्त्र गहाय कैं रखि निज प्रण की लाज।
कै अब भीषमही यहाँ, कै तुमहीं, यदुराज ! ॥४६॥
शरनि ढाँपि रवि-मंडलहिं, शोणित-सरित अन्हाय।
तेरीही सौं तोहिं हरि ! रहिहौं अस्त्र गहाय ॥४७॥
तेरीही सौं, युद्ध-मधि, तेरेहीं बल आज।
हौं शान्तनु-सुत मेटिहौं प्रण तेरो, यदुराज ॥४८॥
इत पारथ-रथ-सारथी, उत भीषम रण-धीर।
तिलहूँ नहिं टारे टरैं, दुहूँ वज्र-प्रण-वीर ॥४९॥
मुख श्रम-सीकर, दृग अरुण, रण-रज-रंजित केश।
फहरतु पटु, गहि चक्र हरि धाये सुभट सुवेश ॥५०॥
कच रज-रंजित, रुधिर-मिलि झलकत श्रमकण अंग।
फहरतु पटु गहि चक्र हरि धाये करि प्रण-भंग ॥५१॥
जन-वत्सल पारथ-सखा, धन्य धन्य, यदुराज !
राखी निज प्रण मेटि कैं शान्तनु-सुत की लाज ॥५२॥

प्रताप-प्रतिज्ञा

मूँछ न नीचौं गहिहौं, हौं प्रताप सुत-हीन।
करि पायौं जौलौं न मैं गढ़ चितौर स्वाधीन ॥६०॥
महल नाहिं पगु धारिहौं, रहिहौं कुटी छवाय।
हौं प्रताप जौलौं न ध्वज दई फेरि फहराय ॥६१॥

—

वीर-प्रतिज्ञा

हौंहूँ सिंह-कुमार, जो वह खल गज मदमंत।
कुंभहि नखनु विदारिहौं, अरु उखारिहौं दंत ॥६२॥
हौंहूँ आजु अगस्त्य, जो वह अभिमान-समुद्र।
ताहि अँचैहौं अंजुरिनु, सहज सोखिहौं छुद्र ॥६३॥
हौंहूँ मघवा-बज्र, जो वह खल भूधर-शृङ्ग।
देहौं खेह मिलाय यौं, चूर-चूर करि अंग ॥६४॥

—

द्रौपदी-केश-कर्षण

कृष्णा-कच-कर्षण लखत, धिक, पारथ नतग्रीव!
धिक पौरुष, धिक बाहु-बल, धिक-धिक यह गांडीव ॥६५॥
खैंचत खल तिय-पट, तऊ खैंचत नाहिं कृपान।
धर्मराज! धिक धर्म अस, धिक धीरज, धिक ज्ञान ॥६६॥

महाराणा साँगा

लसति जासु पवि-देह पै असी घाव की छाप।
सो साँगा निज साँग मैं दलौ न काकौ दाप ॥७७॥
हे राणा साँगा! तुम्हीं रण में मरद मलाह।
किते न साँगि-नाव मैं दिये उतारि गुमराह ॥७८॥

जयमल और पत्ता

हे जयमल राठौरही तुव सुपूत, चित्तौर।
भरन-भरन तुव घाव जो दिये प्राण तिहिं ठौर ॥७९॥
पत्ता-लौं अकबर-अनी पत्ता दई उड़ाय।
दिये फेरि चित्तौर पै प्राण-प्रसून चढ़ाय ॥८०॥
लाज आज मेवाड़ की, बस तुम्हरेहीं हाथ।
जयमल! पत्ता! फूल-लौं हँस चढ़ाइयौ माथ ॥८१॥
जहँ जयमल, पत्ता वहीं, एक प्राण द्वै देह।
भयो अमर मेवाड़ मे, इन दोउनु को नेह ॥८२॥

मलिक मोहम्मद जायसी

दो० १—चण्डोल=पालकी । सँजोइल=सजाकर । बैठ लोहार... भानू=इसे सूर्य भी नहीं जानता था कि उसके भीतर लोहार बैठा था । ओल=जमानत । तुरी=तुरंग, घोड़े ।

दो० २—सौंपना=देखरेख में, निरीक्षण में । अगमना=आगे । अँकोरा=घूस, रिशवत । किली=कुंजी । स्यो=साथ ।

दो० ४—जाइ एक घरी=एक घड़ी के लिये जाय । छूँछी...भरी= जो घड़ा खाली था उसे ईश्वर ने फिर से भरा अर्थात् अच्छी घड़ी आई । छूँछि=खाली । खाँड़ै=खड्ग । तीख= तेज । गगन सिर लगा=आकाश तक कूदा । जो... सँभारा=जो जान पर खेलकर तलवार उठाता है । [illegible] कर जाते हैं

दो० ५—गोइ लेइ जाइ=चौगान खेलों के खेल में चलते से गेंद निकाल ले जाना । गोइ=गेंद

दो० ६—परति [illegible]=अंधकार होना जाना है

[illegible]

दो० ७—हाँका=ललकारा। सोहिल=एक तारा जिसे अगस्त्य कहते हैं। यह वर्षा के अन्त में उगता है। डुँगवै (दुर्ग) =किला, धुस्सा। जमकातर=यवन-समूह, राक्षस। मेंड़=बाँध। टेकौं=रोकूँ। बेंड़ा=आड़ा, तीखा, टेढ़ा।

दो० ८—बान=बाण। बादी=दुश्मन, शत्रु। हरद्वानी=स्थान-विशेष की बनी (तलवार)। उठौनी=धावा। स्यों=सहित। बखतर=कवच। कूँड़=टोप।

दो० ६—बगमेल=हाथों हाथ की लड़ाई। भारत=युद्ध।

दो० १०—ठटा=समूह। करवाह=करवाल, तलवार। लावा=लगाया। धूका=ढुका, झुका।

दो० ११—छेका=घेर लिया। गाजा=गर्जा। बाजा=लड़ा। खसी=गिरी।

दो० १२—निहाऊ=निहाई।

लंका-दहन

कवितावली से

१—निघुसि=निकल कर, छूटकर । कनक=सोना । व्योम=आकाश । बालधी=पूंछ । हहरात=घबराते हैं । भट=योधा । कृसानु=अग्नि । रिस=क्रोध ।

२—जाल=समूह । लीलिवे को=निगलने के लिए । वीथिका=मार्ग । भूरि=बहुत से । धूमकेतु=पुच्छल तारे । उघारी=नंगी । सुरेसचाप=इंद्रधनुष । कलाप=समूह । सरि=नदी । जातुधान=राक्षस । प्रजारी है=जलायेगा ।

३—घुघुक=हूंककर । बुबुकारी=हुङ्कार, जोर जोर से रोना । निकेत=घर भामिनी=स्त्री छोरा=छोकरा; बच्चा । महिष=भैंस वृषभ=बैल

४ नाद=शब्द सविषाद=दुख से, रावनो=रावण मारन हूं=मय बावनो=बामन, विष्णु के एक अवतार, आवनो=आना बामदेव=शिव बादि=व्यर्थ

[८]

सेस=शेषनाग । दुरे=छिपे । मानसर=मानसरोवर । कैलास-घर=हिमालय । सुधा सरवर=अमृत कुण्ड । रावरे=आपके । सुजस=बड़ाई । काहि=किसे । गुनिये=मानें । लौं=तक । गनौं=गिनता हूँ । भटकि हार्‍यो=खोजते खोजते थक गया । लखिये कछू न=कुछ नहीं देख पाता हूँ । केती=कितनी । चित=हृदय । चुनिये=चुनता हूँ ।

[९]

जम्भ=एक राक्षस का नाम जिसे इन्द्र ने मारा था । बाड़व=बड़वाग्नि, जल की अग्नि । सुअम्भ=जलराशि, समुद्र । सदम्भ=अभिमानी । रघुकुलराज=श्रीरामचन्द्र । पौन (पवन)=हवा । वारिवाह=बादल । संभु=शिव । रतिनाह=कामदेव । राम द्विजराज=परशुराम । दावा=बन की अग्नि । द्रुम-दण्ड=वृक्ष की शाखा । तुण्ड=हाथी । मृगराज=सिंह । तम=अंधकार । अंश=भाग । कृ=कृष्ण ।

[१०]

जलधि=समुद्र । उद्ध (ऊर्ध्व)=ऊँची । उर्मि (ऊर्मि)=लहर । अनिलचक्र=[illegible] । [illegible] । [illegible] । किभ्रिय=की । सु=स्व । अप (आप) जल । निवाहक (निर्वाहक)=निर्वाह करने वाले । माहिमृत=[illegible] । किरवान=तलवार

(२४)

जामिनि=रात। पावस=वर्षाऋतु। सूरति=शक्ल। नव पूषन=बाल सूर्य।

(२५)

चापि लई=दबा ली। दिसि चक्का=दिशाओं के चक्र को। दरीन=गुफ़ाओं में। दुरे=छिप गये। नक्का=पार कर गये। डक्का=डंका।

(२६)

रैयति=प्रजा। गुन भरि कै=राजनीतिक चालों का आश्रय लेकर। हाड़ा=कोटा बूँदी के राजा। रायठौर=राठौर, जोधपुर नरेश। कछवाहे=जयपुराधीश से तात्पर्य। गौर=गौड़वंशी। चमाऊ=चँवर। निदरि=निरादर करके। ऐंड़=स्वाभिमान।

(२७)

मारतण्डमध्य=सूर्य में। फिरै=पलटा। चढ़े ते कुमति=कुबुद्धि होने से। अनूप=अनुपम।

(२८)

अवरङ्ग=औरङ्गज़ेब। मढ़ि कै=पूर्ण करना। पैज=दृढ़ता। सु=छन्द पूर्ति के लिये विशेषता सूचक व्यर्थ उपसर्ग। लाख-भौन=वारणावत का दुर्योधन द्वारा बनवाया हुआ लाक्षागृह। कढ़े=निकल गये। द्यौस=दिवस। लाख चौकीतें=लाखों पहरों से।

[५५]

जोग = योग्य। खरो = खड़ा। पंज जारिन = पाँच हज़ारियों। नियरं = पास। गैर मिसिल = बेतरतीबी। गुसैल = गुस्सैबाज़। गुसा = गुस्सा। सियरे = नम्र। बलकन लागो = गरजने लगा। तमक = आक्रोश। पियरे = पीले।

[५६]

भो = हुए। सिगरे = सभी। अलि = भौंरा।

[५७]

ठट्ठ = झुंड। घनकारे = काली घटा। कुम्भ = मस्तक। करिन के = हाथियों के। चिक्करत = चिंघाड़ते हैं। भारे = बहुत। बिहद = बहुत बड़ी। गुमान झारि डारे = घमण्ड चूर कर दिये॥

[५८]

कमान = तोप। बानन = निशाना। मुरचान = मोरचा। हाँक = ललकार कर। दावा बाँधि = हिम्मत रखकर। हल्ला = कार। बीरवर जोट में = योद्धाओं के दल में। किम्मति = क़ीमत। भट झोट = शूरवीरों के झुंड में।

[५९]

धौंसा = लड़ाई का नगाड़ा। धुकार = गरजन। दरकत = (दलकत) काँप उठते हैं। कुंभि = हाथी। जोम के = गर्वीले।